ISSN : 2277-4963

# VIKAS INTERNATIONAL JOURNAL MANAGEMENT HUMANITIES SCIENCE & TECHNOLOGY

(Peer Review Indexing with Impact Factor)

# VIKAS PUBLISHER'S & DISTRIBUTORS

**Vikas International Journal of Management, Humanities, Science & Technology**
**Head Office: A-5, Christian Colony, Patel Chest, University of Delhi, Delhi - 110007**
**Mob.: 9455251733, 9918156392, Website: www.theyugantar.in**
**Email: akhilesh_tiwari1979@yahoo.com, santoshtiwari05712@gmail.com**

**Volume – 18**
**June, 2025**

**"Vikas International Journal"**
**(A Peer-Reviewed Research Journal)**

**ISSN : 2277-4963**

| | | |
|---|---|---|
| **Chief-Editor** | : | Santosh Kumar Tiwari |
| **Managing Director** | : | Prof. H.S. Dhami, Garhwal University, Vice Chancellor |
| **Editorial-Board** | : | Prof. R.C. Tripathi, Gramoday University, Chitrakut |
| **Managing Editor** | : | Dr. R.K. Shukla, Invertis Univeristy, Barelly, UP |
| **Editors** | : | Prof. I.D. Tripathi, Gurughansidas University, C.G.<br>Dr. O.P. Tripathi, Dr. C.V. Raman Univeristy C.G.<br>Dr. Manoj Pandey, Amity University, Gwalior<br>Dr. Mahendra Singh Meena, University of Kota, Rajasthan<br>Dr. Chandra Jeet Singh, University of Kota, Rajasthan<br>Dr. Seema Dadhich, Jodhpur, Rajasthan Prof. Kalpana Rai, Gujrat<br>Dr. Sangeeta Singh, C.V. Raman University, C.G.<br>Prof. Bhagwant Singh, Pandit Ravi Shankar Shukla University Raipur C.G.<br>Prof. Umesh Kumar Singh, Vikram University, Ujjain<br>Dr. D.K. Pandey, Ambedkar College, Delhi |
| **Advisory Board** | : | Dr. S.K. Srivastava Additional Director Amity University, (U.P.)<br>Prof. Praful Dhar, PIMB, Pune |
| **Foreign Editorial** | : | Prof. Indra Bhat, Tokyo<br>Prof. Dr. Hideaki Ishida, Daito Bunka University, Japan<br>Prof. Roanna Mghomare, California Univeristy, U.S.A.<br>Prof. Anita Kapoor, U.S.A. |

**NOTE:** T*he Editor and the publisher do not claim any responsibility, liability for statements made and opinions expressed by author(s).*
@VIJMST
**Subscription and sending articles to be addressed to (Only Soft copy of articles is accepted).**

***Editor-in-Chief***
Vikas International Journal of Management, Humanities, Science & Technology
Head Office: A-5, Christian Colony, Patel Chest, University of Delhi, Delhi - 110007
Contact: +91-99181 56392, +91-94552 51733
Email: santoshtiwari05712@gmail.com Website : http://theyugantar.in

# CONTENTS


| S.No. | Subject | Page No. |
|---|---|---|
| 1. | समकालीन हिंदी कविता में राजनीतिक–सामाजिक चेतना – डॉ. लालचंद सिन्हा | 1-5 |
| 2. | Social Structure and Social Change - Dr . Hemlata Mahawar | 6-14 |
| 3. | Measuring the Level of Stress Among Banking Employees in Haryana - Priyanka Arya, Dr. Neelam Jain | 15-19 |
| 4. | पर्यावरण सुरक्षाः अस्तित्व के लिए चुनौती – सुखराम भाभोर | 20-23 |
| 5. | E-Information Resources In Libraries : An Quantative Analysis of Selected Universities of Delhi -Dr. Rubita Singh | 24-32 |
| 6. | पर्यावरणीय दृष्टि से राम – डॉ. अम्बिकेश त्रिपाठी | 33-36 |
| 7. | Existential themes in abbas kiarostami 1997 film taste of cherry - Satyen paneri | 37-38 |
| 8. | A Study Of Gender Equality And Human Rights In India - Prof. Deepti Jha | 39-43 |
| 9. | विभिन्न कालों में महिलाओं की स्थिति का बदलता प्रतिरूप – एक परिचय – डॉ. सीमा मीणा | 44-48 |
| 10. | "Symbolic Threads: Unraveling the Semiotic Tapestry of Indian Advertisements" - Dr. Anshu Srivastava | 49-56 |
| 11. | भारत में लोकतांत्रिक अर्थशास्त्र की रक्षा में मीडिया की भूमिका : एक कानूनी सिद्धांत – डॉ. पुष्पेंद्र कुमार मुशा | 57-68 |
| 12. | ख्यातकार दयालदास सिंढ़ायच – डॉ. सुरेश कुमार साँदू | 70-73 |

# समकालीन हिंदी कविता में राजनीतिक–सामाजिक चेतना

**डॉ. लालचंद सिन्हा**
सहायक प्राध्यापक (हिंदी)
शासकीय नवीन महाविद्यालय,ठेलकाडीह
जिला– खैरागढ़–छुईखदान–गंडई (छ.ग.)

**प्रस्तावना –**

प्रत्येक कालावधि में प्रणीत साहित्य तद्युगीन समाज–परिवेश से अनुस्युत रहता है। समकालीन कविता भी परे नहीं रही है। समकाल में घटित घटनाओं का जो प्रभाव सामाजिक जीवन पड़ा, वह सब सापेक्ष रूप से समकालीन कविताओं अंकित होता रहा है। ज्ञान–विज्ञान की प्रगति के साथ–साथ मानव जीवन में भौतिक सुखों में उसी क्रम में वृद्धि हुई है। इससे मानव जीवन में विविधता आई है। आज का मानव समाज भेदों के कई स्तरों में विभक्त है। इसके लिए विभिन्न वैचारिक स्थितियॉ, आदर्श, परंपराऍ, अंतरविरोधों, मान्यताओं, धर्म, भाषा, राजनीति, और स्व वर्गहित आदि प्रमुख कारणों में से हैं। सच बात तो यह है कि आज के मानव जीवन की जटिलताओं और संघर्षमयता के मूल में झांकने का प्रयास करें तो इन सबके लिए आर्थिक क्षेत्र उत्तरदायी है। विश्व में बढ़ते औद्योगीकरण भौतिकतावादी वृत्ति के कारण मानवीय इच्छाऍ दमित होने लगी है। कुंठा, निराशा, संत्रास और पलायनवादी वृत्ति जिसकी उपज है। आज का मानव दूसरों से अत्यधिक सशंकित तो है ही, आत्मविश्वास भी खोने लगा है। मनुष्य सारे मूल्यों का स्रोत और उपादान है, साथ ही वह स्वयं ही उनके विघटन का भी कारण है। जो मूल्य सहस्त्रों वर्ष पूर्व निर्मित हुए थे सर्वतः विघटित होते जा रहे हैं। वैज्ञानिक प्रविधियों के विकास के परिणाम स्वरूप संसार की सीमाऍ संकुचित हुई है। मनुष्य के गतिशील संपर्को ने समाज में मूल्यहीन को जन्म दिया है। आज का मनुष्य स्वयं एक–दूसरे का सबसे बड़ा खतरा बन चुका है। सारे मानवीय संबंध और प्रतिमान अस्थिर हो गया है जिसके कारण संयुक्त परिवार टूटने लगे हैं। आपसी प्रेम में स्वार्थपरता की गंध आने लगी है। धर्म का मार्ग बहुत संकीर्ण होता जा रहा है।

समकालीन हिंदी कविताओं में उक्त सारी परिस्थितियॉ यथार्थ रूप में चित्रित हुआ है। हिंदी साहित्य में अज्ञेय द्वारा 1943 में संपादित 'तारसप्तक' को समकालीन कविता का प्रवेश द्वार माना गया है। समकालीन कविता के अग्रदूत **सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'** ने अपनी कविताओं में समकालीन कविता सामाजि युगबोध का धरातलीय चित्रण किया है। उन्होंने आज के बदलते परिवेश में मनुष्य की सामाजिक मूल्यहीनता चित्रण करते हुए ऐसे लोगो पर व्यंग्याघात करते हुए लिखा है– **सांप!/तुम सभ्य हो हुए नहीं/नगर में बसना भी, तुम्हें नहीं आया/एक बात पूछूँ /उत्तर दोगे/तब कैसे सीखा डसना ?/विष कहॉ पाया ?'** 1

अज्ञेय जी ने देश में फैली हुई गरीबी, भुखमरी, अशिक्षा और तद्जन्य जनता की पीड़ा के प्रति गहरी संवेदना व्यक्त किया है। एक ओर गरीब जनता अपने दैनिक जीवनापयोगी चीजों के लिए लाचार है, वहीं दूसरी ओर राजनेतागण देश की समृद्धि की थोथी योजना बनाने में मशगूल हैं। अज्ञेय जी ने अपनी 'बॉगर और खादर' कविता में इसका यथार्थ चित्रण किया है– **''बॉगर में राजा जी का बाग है/चारों ओर दीवार है/बीच बाग कुंऑ है/बहुत बहुत गहरा/...और उसका जल/मीठा,निर्मल,शीतल/पर इस पर रहता है पहरा/खादर में/... आगे खुली रेती पार/सदानीरा नदी है/ गॉवों के गॅवार उसी में नहाते हैं/...आचमन करते हैं /डॉगर भंसाते हैं/और जो मर जाये उनकी मिट्टी भी /वहीं होनी बदी है।** ''2

शिक्षा और संचार के विस्तार तथा औद्योगीकरण–शहरीकरण जनित पलायन के कारण अब प्रकृति की गोद में जीवन यापन करने वाले ग्रामीणों की जीवन शैली में शहरों का दूषित असामाजिक वातावरण विषैली वायु की भांति फैलती जा रही है। **'हमारा देश' कविता में यह दृष्टव्य है– ''इन्हीं ढोल मादक बॉसुरी के/उमगते सुर में/हमारी साधना का रस बरसता है/इन्हीं के मर्म को अनजान/शहरों की ढॅकी लोलुप विषैली/वासना का सॉप डसता है।''**3

समकालीन कविता के सशक्त हस्ताक्षर के रूप में **श्री गजानन माधव मुक्तिबोध** का स्थान स्वर्णांकित है। वे सचेत,सतर्क और सोद्देश्य कवि हैं। व्यक्ति और समाज के पारस्परिक संबंधों की वैज्ञानिक व्याख्या और उसकी काव्यमय अभिव्यक्ति उनकी कविताओं का अंतर्मन है। सामाजिक यथार्थबोध चित्रण की दृष्टि से वे कबीर और निराला के साहित्यिक वंशधर हैं। उनकी कविताऍ शोषित, पीडित और गरीब निम्नवर्गीय लोगों का सच्चा हिमायती बनकर खड़ी है। मुक्तिबोध जी पूंजीवाद की शोषण वृत्ति में पीसते हुए शोषितों, श्रमिकों और निम्नमध्यवर्गीय परिवार की निराशा, कुण्ठा, संत्रास और जद्जनित जीवन संघर्षो को मुखरित करने में सफल रहे हैं। 'मै तुम लोगों से दूर हूँ ' कविता शोषित श्रमिक की जीवन व्यथा को इस तरह से अभिव्यक्त किया है–**''मैं तुम लोगों से इतना दूर हूँ/तुम्हारी प्रेरणाओं से मेरी प्रेरणा इतनी भिन्न है/कि जो तुम्हारे लिए विष है, मेरे लिए अन्न है।''**4 मुक्तिबोध जी वर्तमान में समाज में फैली विसंगतियो को दूर कर देना चाहता है। वे आर्थिक अव्यस्था को समाप्त करने के पक्षधर हैं।उन्हें एक ऐसे प्रतिनिधि की आवश्यकता है जो शोषितो–पीड़ितों में चेतना का स्वर फूंक सके– **''इसलिए कि जो है उससे बेहतर चाहिए/पूरी दुनिया साफ करने के लिए मेहतर चाहिए।''**5 उनके द्वारा प्रणीत **'चॉद का मुॅह टेढ़ा है'** कविता संग्रह की सर्वाधिक लंबी कविता 'ऍधेरे में देश के आधुनिक जन इतिहास का स्वतंत्रता पूर्व और पश्चात् का एक दहकता इस्पाती दस्तावेज है। मुक्तिबोध जी ने समाज फैली कुव्यवस्था और उससे उत्पन्न दबाओं का यथार्थ चित्रण किया है। वे स्वयं अपने अंतर्मन में उत्पन्न होने वाली जनक्रांति की भावना को दबाने विवश है। यही भावना बार–बार कवि को कचोटते रहता है और समय पाकर प्रकट भी होता है–**'' वह रहस्यमय व्यक्ति/अब तक न पायी गयी मेरी अभिव्यक्ति है/पूर्ण अवस्था वह/निज संभावनाओं,विहित प्रभावों, प्रतिभाओं की/ मेरे परिपूर्ण का**

**आविर्भाव/हृदय में रिस रहे ज्ञान का तनाव वह/आत्मा की प्रतिमा।"**6 समकालीन भौतिकतावादी समाज में मानव मानवीय मूल्यों का भूलता जा रहा है और मानव के स्तर से गिरकर वस्तुपरक होते जा रहा है। वे 'अंधेरें में' कविता में आदर्श और सिद्धांत का चोला पहनकर स्वार्थ में लिप्त लोगों नग्न कर दिया –" **प्रोसेसन/विचित्र प्रोसेसन/प्रतिष्ठित पत्रकार इसी नगर के/.... कर्नल, ब्रिगेडियर, जनरल, मार्शल/कई और सेनापति, सेनाध्यक्ष/.....कई प्रकाण्ड आलोचक, विचारक/जगमगाते कविगण/मंत्री भी,उद्योगपति और विद्वान/यहॉ तक कि शहर का हत्यारा कुख्यात डोमा जी उस्ताद/बनता है बलवन हाय हाय।"**7 आदर्श और सिद्धांत का चोला पहनकर स्वार्थ में अंधे व्यक्तियों पर कटु व्यंग्य करते हुए लिखते हैं –**"ओ मेरे आदर्शवादी मन/ओ मेरे सिद्धांतवादी मन/अब तक क्या किया?/जीवन क्या जिया?/उदरम्भरि बन अनात्म बन गये/भूतों की शादी में कनात से तन गये/किसी व्यभिचारी के बन गये बिस्तर/.....विवेक बघार डाला स्वार्थों के तेल में।"**8

समकालीन काव्यधारा के प्रथम पंक्ति के रूप में **श्री भवानी प्रसाद मिश्र** का नाम आदर से लिया जाता है। श्री मिश्र जी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने अपनी भावनाओं को पाठकों तक सहज और सरल शब्दों में संप्रेषित किया है, जिससे अधिक से अधिक जनचेतना जागृत हो सके। उन पर गांधी जी का व्यापक प्रभाव था। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् ऐसी कल्पना की गयी थी कि हमारे भारतवर्ष मे सभी व्यक्ति सुखी और समृद्ध होंगे, सभी शिक्षित होंगे। लेकिन इन आशाओं पर उस समय पानी फिर गया जब तथाकथित राजनेताओं में स्वार्थ भावना घर कर गई। परिणामतः यह देश शस्य–श्यामला संपन्न होते हुए भी इसकी जनता गरीबी,भुखमरी,अशिक्षा,अन्याय और भय तथा संत्रास से युक्त जीवन जीन के लिए विवश है। इन स्थितियों को अभिव्यक्ति मिश्र जी ने इस प्रकार से प्रदान की है–**"मैं असभ्य हूँ, क्योंकि खुले नंगे पॉव चलता हूँ/ मैं असभ्य हूँ, क्योंकि चीर धरती धान उगाता हूँ/ मैं असभ्य हूँ, क्योंकि कात कर स्वयं बनाता कपड़े/ मैं असभ्य हूँ, क्योंकि नहीं पैन मेरे जबड़े/आप सभ्य हैं,क्योंकि हवा में उड़ जाते हैं ऊपर/ आप सभ्य हैं,क्योंकि धान से भरी आपकी कोठी/ आप सभ्य हैं,क्योंकि आपके महज बने हैं/ आप सभ्य हैं,क्योंकि आपके जबड़े खून से सने हैं।"**9 लोगों में मानवीय मूल्यों का ह्रास किस स्तर तक हो सकता है इसका विवरण मिश्र जी ने अपने **'गीत–फरोश'** नामक कविता में यथार्थ रूप से दिया है। लोगों ने सच्चाई और ईमान तक को स्वार्थपूर्ति के निमित्त बेच दिये हैं। कवि को ऐसे स्वार्थी समाज में अपने संवेदनात्म मनोभाव अर्थात् अपनी कविता को बेचना पड़े तो इसमें कोई असंगति नहीं है–**"जी,पहले कुछ दिन शर्म लगी मुझको/पर पीछे–पीछे अक्ल जगी मुझको/जी लोगों ने तो बेच दिये ईमान/जी, आप न हो सुनकर ज्यादा हैरान/मैं सोच–समझकर आखिर/अपने गीत बेचता हूँ।"**10

एक सच्चा जन कवि वही होता है, जिनके हृदय में विपरीत परिस्थियों में जी रहे साधारण जन के प्रति गहरा अनुराग होता है। इस दृष्टि से समकालीन काव्यधारा के कवि **बाबा नागार्जुन** पूर्णतः खरे उतरते हैं। वे संघर्षशील जनता के सच्चे प्रतिनिधि कवि हैं। उन्होंने अपने देश की जनता की दशा को लेकर गहरी चिंता ,राजनैतिक स्तर पर उपेक्षा तथा बेहतर जीवन के संघर्ष को अपनी कविता में उभारा है। बाबा नागार्जुन सीधी–सादी कविता में अपनी बात को पूरी ताकत के साथ कहने में सामर्थ्य रखते हैं। उनकी कविता में युगबोध सापेक्ष सामाजिक स्थिति का खुला और साफ–साफ चित्रण है। बाबा नागार्जुन यायावर होने के साथ ही संघर्षशील व्यक्ति हैं। भारत को ब्रिटिश साम्राज्य से मुक्ति तो मिली लेकिन आत्मिक स्वतंत्रता नहीं मिल सकी। स्वतंत्रता के पश्चात् यहॉ की वायु मे पदलोलुपता और स्वार्थ की गंध आने लगी थी। उनकी पंक्तियॉ दृष्टव्य है– **"सामंतों ने कर दिया प्रजातंत्र का होम/लाश बेचने लग गये खादी पहने डोम/खादी पहने डोम लग गये लाश बेचने/माइक गरजे, लगे जादुई ताश बेचने/इन्द्रजाल की छतरी ओढ़े श्रीमन्तों ने/ प्रजातंत्र का होम कर दिया सामंतों ने।"**11 बाबा नागार्जुन ने प्रेमचंद जी को उन्होंने अपना अग्रज स्वीकार किया है। साधारण जनता ही उनकी कविता का ऊर्जा स्रोत है। उनका सारा जीवन शोषित साधारण जन के जीवन की विसंगतियों और विद्रूपताओं को सबके समक्ष उजागर करने में बीता है। उनकी कालजयी कविता **'शासन की बंदूक'** मे शासन की क्रूरता पर करारा व्यंग्य है। देश में सर्वत्र कुशासन है जिसमें प्रख्यात गांधीवादी विनोबा जी की अहिंसा मूलक आवाज भी दब गई है–**"बढ़ी बधिरता दस गुनी, बने विनोबा मूक/धन्य,धन्य वह, धन्य वह, शासन की बंदूक/सत्य स्वयं घायल हुआ,गई अहिंसा चूक/जहॉ तहॉ दगने लगी, शासन की बंदूक।"**12 इतना होने पर भी बाबा नागार्जुन जी को जनता के आत्मबल, उत्साह और साहस बढ़ाते हुए लिखते हैं –**"जली ठूंठ पर बैठकर, गई कोकिला कूक/बाल न बॉका कर सकी, शासन की बंदूक।"**13 **अक्खड़–फक्कड़ और मस्तमौला** बाबा नागार्जुन जी बात को साफगोई से कर सकने की ताकत रखते हैं।जनता के सपनों और आस्थाओं पर पूर्णतः खरे उतर सके हैं।

समकालीन समाजवादी विचारधारा को प्रवाहित करने वाले समकीन कवियों में **श्री रघुवीर सहाय जी** एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। उनकी कविता की भावधारा समकालीन राजनीतिक और सामाजिक विसंगतियों को लेकर बही है। इसी कारण कुछ लोग उन्हें **राजनीतिक कविता' का सर्वप्रधान तर्क मानते हैं।** श्री सहाय जी की कविता का मूल स्वर छले गए और सत्ता तंत्र द्वारा प्रपीड़ित पस्त साधारण जन के प्रति गहरी संवेदना है। श्री सहाय जी की कविताओं में उनके पत्रकार जीवन की गहरी छाप पड़ी है। इसीलिये वे भोगे हुए यथार्थ की सही पहचान कर सकने में सफल हुए हैं। शासन तंत्र से प्रपीड़ित साधारण जन के प्रति गहरी संवेदना व्यक्त करने के लिए ऐसी भाषा चाहते हैं, जिसके दो अर्थ न हों। जो शोषित जनता की पीड़ा को शतशः व्यक्त कर सके– **"मैं सब जानता हूँ, पर बोलता नहीं/मेरा डर मेरा सच एक आश्चर्य है/पुलिस के दिमाग में वह रहस्य रहने दो/वे मेरे शब्दों की ताक में बैठे हैं/जहॉ सुना नहीं, उसका गलत अर्थ लिया,और मुझे मारा/इसलिए कहूँगा मैं, मगर मुझे पाने दो/पहले ऐसी बोली, जिसके दो अर्थ न हो।"**14 वर्तमान में मानवीय मूल्यों का दिन –प्रतिदिन ह्रास होता जा रहा है। परिणामतः व्यक्ति का जीवन समाज में रहते हुए भी असुरक्षित हो गया है। सारा समाज इतना स्वार्थमय और कायर हो गया कि एक व्यक्ति को शोषण और अत्याचार से मरते देखकर ऑखें मूँद लेता है। समाज की इन्हीं विसंगतियों पर चूभते व्यंग्य प्रहार **'रामदास'** कविता में किया है–**"निकल गली से तब हत्यारा/आया उसने**

**नाम पुकारा/हाथ तौलकर चाकू मारा/छूटा लोहू का फव्वारा/कहा नहीं था उसने आखिर उसकी हत्या होगी/भीड़ ठेलकर लौट गया वह/मरा पड़ा है रामदास यह/देखो–देखो बार–बार कह/लोग निडर उस जगह खड़े रह/लगे बुलाने उन्हें, जिन्हें संशय था, हत्या होगी।''**15 श्री सहाय जी राजनैतिक संदर्भों को काव्य में निरूपित करने में सिद्धहस्त हैं। उन्होंने शासन की स्वेच्छाचारी शोषण वृत्ति का पर्दाफाश किया है। शासक वर्ग शोषित जनता को कष्ट में देखकर उसकी हॅसी उड़ाता है कि ये कितने लाचार है। वे यह सोचकर खुश होते हैं कि यह प्रजातंत्र के अंतिम क्षण है। **'आपकी हॅसी'** नामक कविता में निरंकुश शासक वर्ग पर व्यंग्य करते हुए वे लिखते हैं–**''निर्धन जनता का शोषण है/कहकर आप हॅसे/लोकतंत्र का अंतिम क्षण है/कहकर आप हॅसे/चारों ओर बड़ी लाचारी है/कहकर आप हॅसे/कितने आप सुरक्षित होंगे/मैं सोचने लगा/सहसा मुझे अकेला पाकर/ फिर से आप हॅसे।''**16 श्री रघुवीर सहाय जी की सारी निष्ठा मानवता के प्रति रही है।वे अपने समय और परिवेश के प्रति निरंतर जागरूक रहे हैं।

समकालीन कविता की यह सर्वप्रमुख विशेषता रही है कि उसमें सातवें–आठवें दशक का इतिहास अपने आप उभर आया है। समकालीन हिंदी कविता के समर्थ हस्ताक्षर और हिंदी गजल के प्रर्वतक **श्री दुष्यंत कुमार त्यागी** का नाम आदर से लिया जाता है। **'सूर्य का स्वागत', आवाजों के घेरे', 'एक कंठ विषपायी' और 'साये में धूप'** उनकी पहचान और प्रसिद्धि बनाने वाली रचनाएॅ हैं। 'साये में धूप' हिंदी गजलों की संभावनाओं का द्वार है। **श्री दुष्यंत कुमार जी** अपने गजल संग्रह **'साये में धूप'** में अपने समाज, देश और परिस्थितियों के प्रति गहरे संवेदनशील है। गांधी जी ने स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् जिस समाज व देश का सपना देखे थे वे सारे के सारे सपने स्वार्थी पदलोलुप राजनेताओं ने बिखरा दिये– **''कहॉ तो तय था चिरागॉ हरेक घर के लिए/कहॉ चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए/न हो कमीज तो पॉवों से पेट ढॅक लेंगे/ये लोग कितने मुनासिब हैं, इस सफर के लिए।''**17 कुछ इस प्रकार की बानगी और देखिए –**''कई फाके बिताकर मर गया, जो उसके बारे में/वो सब कहते हैं अब, ऐसा नहीं हुआ होगा/यहॉ तो सिर्फ गूॅगे और बहरे लोग बसते हैं/खुदा जाने यहॉ पर किस तरह जलसा हुआ होगा।'' '' दुकानदार तो मेले मे लुट गए यारों/तमाशबीन दुकान लगा के बैठ गए/खड़े हुए थे अलावों की ऑच लेन को, सब अपनी– अपनी हथेली जलाके बैठ गए।''**18

वास्तव में सातवे–आठवें दशक की कविताएॅ सर्वाधिक विस्फोटक प्रभावशाली रही है। क्योंकि इसमें युग चेतना को अनुभव के साथ भोगने और जन जन तक उसे संप्रेषित करने में पूर्णतः सक्षम है। इसके पीछे मूल कारण यह है कि लंबे संघर्षोपरांत जो स्वतंत्रता मिली और इससे जो दिवा स्वप्न दिखाई गए थे, वह शीघ्र ही भंग हो गया। समकालीन कवि **श्री सुदामा पाण्डेय 'धूमिल'** की कविता प्रहार और पर्दाफाश की कविता है। उनके काव्य में निहित युग सचेतक भावना को लक्षित करके कहा गया यह कथन पूर्णतः सत्य है कि **''धूमिल की कविता क्षत–विक्षत हिन्दुस्तान की तस्वीर है, वह लोकतंत्र की विफलता और राजनीतिक,सामाजिक तथा नैतिक स्तर पर आम आदमी के साथ किये गये विश्वासघात का दस्तावेज है।''** धूमिल जी दीन–हीन दलित और ग्रामीण जनों के सच्चे प्रतिनिधि हैं। वे अभावग्रस्त ग्राम्य–जीवन से जीवंत संपर्क में थे, जहॉ सिर्फ अशिक्षा,गरीबी,रोग और भय ही भय का आतंक है। 'बीस साल बाद' कविता में देश की जनता दयनीय दशा का चित्रण करते हुए लिखते हैं –**''बीस साल बाद/मैं अपने आप से एक सवाल करता हूॅ/जानवर बनने के लिए कितने सब्र की जरूरत होती है/.....दोपहर हो चुकी है/ हर तरफ ताले लटक रहे हैं/दीवारों से चिपके गोली के छर्रों/और सड़क पर बिखरे जूतों की भाषा में/एक दुर्घटना लिखी गई है/हवा से फड़फड़ाते हुए हिन्दुस्तान के नक्शे पर/गाय ने गोबर कर दिया है।** ''19 धूमिल जी ने 'रोटी और संसद' कविता में ऐसे स्वार्थी नेताओं पर करारा व्यंग्य किया है जो देश की संसद में बैठकर गरीब जनता की रोटी से खेलते रहते हैं–**'' एक आदमी/रोटी बेलता है/एक आदमी रोटी खाता है/जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता है/वह सिर्फ रोटी से खेलता है/मैं पूछता हूॅ/यह तीसरा आदमी कौन है?/ मेरे देश की संसद मौन है।''**20 हमारे संविधान मे जन–गण को संप्रभुत्व मानते हुए सभी व्यक्तियों को सभी प्रकार के समता का मौलिक अधिकार दिया गया है।यह केवल संवैधानिक तथ्य बनकर रह गया है। आर्थिक स्तर पर बहुत ज्यादा असमानता दिखाई देने लगी है। गरीब व्यक्ति दिनों–दिन गरीबी और अभावों के दुश्चक्र में पीसता जा रहा है, दूसरी ओर पूंजीपति–धनिक वर्ग का आर्थिक क्षेत्रों पर एकाधिकार हो गया है। ऐसी स्थितियों पर **'अकाल दर्शन'** नामक कविता में प्रश्नाघात किया है–**''वह कौन–सा प्रजातांत्रिक नुस्खा है/कि जिस उम्र में/मेरी मॉ का चेहरा/झुर्रियों का झोली बन गया है/उसी उम्र में मेरे पड़ोस की महिला के/चेहरे पर/मेरी प्रेमिका के चेहरे–सा /लोच है।''**21 भारत का अतीत स्वर्णिम रहा है। लेकिन वर्तमान में देश की हालत बहुत जर्जर हो चुकी है। देश प्रेम की भावना खोने लगी है तथा इस देश के कर्णधार राजनेतागण सत्ता प्राप्ति के लिए घृणित से घृणित हथकण्डे अपनाने लगे हैं। ऐसे राजनेताओं की स्वार्थी चरित्रका उद्घाटन करते हुए धूमिल जी लिखते हैं– **''लाल हरी झंण्डियॉ/जो कल तक शिखरों पर फहरा रही थी/वक्त की निचली सतहों में उतर कर स्याह हो गयी है और चरित्रहीनता/मंत्रियों की कुर्सी मे तब्दील हो चुकी है/मैंने भी इस देश को/ एक जवान आदमी की रंगीन इच्छाओं की गहराई से/ प्यार किया था/मगर अब अतीत में अपना चेहरा/देखने के लिए/शीशे की धूल झाड़ना बेकार है/उसकी पॉलिश उतर चुकी है।''**22

स्वातंत्र्योत्तर कालीन जनसंघर्ष की उपज समकालीन कविताओं के कवियों में **श्री गिरिजा कुमार माथुर** का नाम समादृत है। इनकी कविताओं में अहंवादी व्यक्तित्व से उपजने वाली सभी भावों– काम, कुण्ठा, और अलगाव तथा आतंक का यथार्थवादी चित्रण सहज रूप में मिलता है। समकालीन सामाजिक स्थिति का चित्रण करते हुए माथुर जी **'दो पाटों की दुनिया'** नामक कविता में लिखते हैं–**''राहें सभी अन्धी है/ज्यादातर लोग पागल है/अपने ही नशे चूर/वहशी हैं या गाफिल है/खलनायक हीरो हैं/विवेकशील कायर है/थोड़े से ईमानदार/लगते सिर्फ मुजरिम है।''**23 **'दफ्तर' कविता में सत्ताधारी शोषक व्यवस्था का चित्रण किया है–'' यह कौन सी व्यवस्था है,नाटक के सारे पात्र जहॉ/खलनायक हैं, खुशामदी विदूषक,जिनके हर कुकर्म पर/तालियॉ बजाते हैं,जहॉ तिकड़ी लफंगे सत्ताधारी है/चूर हैं वातानुकूलित अय्याशी में सरे आम पूजते हैं/कामयाब बेईमान फटीचर मीडिलची रोके हैं कई रास्ते। ''** 24

समकालीन कवियों में **श्री सर्वेश्वर दयाल सक्सेना** जी स्वयं में अपने–आप ही एक अभिव्यक्ति हैं। सामाजिक विडंबनाओं के प्रति व्यंग्यशर संघात करने में वे कभी नहीं चूके। प्रजातंत्र इस देश में दिखावा मात्र रह गया है। जिस प्रकार से जूतों के काटने पर व्यक्ति उन्हें पहनने के स्थान पर लाठी मे लटका लेता है, ठीक वही स्थिति इस समय लोकतंत्र की है। इसी विफलता पर व्यंग्य करते हुए वे लिखते हैं–**''लोकतंत्र को जूते की तरह/लाठी में लटकाए/भागे जा रहे हैं सभी/सीना फुलाये।''**25 सक्सेना जी समाज में फैली विभिन्न विसंगतियों को दूर करने जनमानस में संचेतना भर देना चाहते हैं। विघटित सामाजिकता के दौर में लोग विवशता के बजाय कुतुहल को देखना पसंद करते है–**''अपने इस गटापारची बबुए के/पैरों में शहतीरे बॉध कर/चौराहे पर खड़ा कर दो/फिर चुपचाप ढोल बजाते जाओ/शायद पेट पल जाय/दुनिया विवशता नहीं कुतूहल खरीदती है।''**26 प्रचलित विकलांग श्रद्धा, झूठी संवेदना और झूठी दया आदि सामाजिक मूल्यों की हार की पराकाष्ठा है। 'सौंदर्य–बोध' नामक कविता में सटीक व्यंग्य किया है– **आज की दुनिया में विवशता, भूख, मृत्यु/सब सजाने के बाद ही/पहचानी जा सकती है/बिना आकर्षण के दुकानें टूट जाती है/शायद कल उनकी समाधियॉ नहीं बनेंगी/जो मरने के पूर्व/कफन और फूलों का/प्रबंध नहीं कर लेंगे।''**27

जनमानस को विकासोन्मुख प्रगति पथ पर मार्गदर्शन करने वाले समकालीन कवियों में **श्री धर्मवीर भारती** जी का नाम आदर से लिया जाता है। भारती जी का दृष्टिकोण पूर्णतः मानवतावादी रहा है। पूंजी के असमान वितरण ने मनुष्य का स्तरीकरण किया है। ऐसी स्थिति में वे सामान्य से सामान्य मनुष्य को भी पर्याप्त महत्त्व देते हैं– **'' मैं रथ का टूटा हुआ पहिया हूँ/लेकिन मुझे फेंको मत/क्या जाने उकब/इस दुरूह चक्रव्यूह में/अक्षौहिणी सेनाओं को चुनौती देता हुआ /कोई दुस्साहसी अभिमन्यु आकर घिर जाये।''**28 श्री धर्मवीर भारती जी का समग्र काव्य चेतना समकालीन समाज में व्याप्त अंतर्विरोधों एवं असंगतियों का मूलोच्छेदन करते हुए जन–मानस की सोयी हुई आत्मा को जागृत करने का सार्थक प्रयास है।

समकालीन कवि **भारत भूषण अग्रवाल जी** तार सप्तक के प्रकाशन से पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया।अग्रवाल जी की कविताओं में प्रेम और प्रकृति के साथ साथ युगबोध की अभिव्यक्ति हुई है। उनका काव्य संग्रह' एक उठा हुआ हाथ' में राजनीति, प्रजातंत्र, समाजवाद, चुनाव, अर्थहीन जनतंत्र तथा जिंदगी तमाम विसंगतियों की ओर केंद्रित किया है–**''जनतंत्र की टंकी फट गई/और शब्दों का भयंकर रेला है/थर्राता हुआ सबको निगलने आ रहा है/किताबों की फुहारे/अखबारों की बौछार/भाषणों के परनाले,बहसों की नदियॉ।''**29

डॉ.रामविलास शर्मा जी यद्यपि मूल रूप मार्क्सवादी आलोचक हैं। यही कारण है कि उनकी कविताओं में मार्क्सवादी आलोचना के तत्त्व मौजूद है। वे प्रथम तार सप्तक के प्रयोगवादी कवि हैं। उनकी कविताओं में प्रकृति चित्रण के साथ सर्वहारा वर्ग के जीवन का यथार्थबोध भी है। वे शोषित जनता की पीड़ा को मुखरित किया है–**''कंकाल/हड्डियों के रक्तहीन,मांसहीन,कंकाल/.....परतंत्र देश के युवक हैं युवक हैं/कहॉ है जीवन,कहॉ है चिरंतन आत्मा?/हड्डियों का संघर्षपूर्ण जीवन है/हड्डियों में बसा हुआ ताप ही आत्मा है।''** 30

आधुनिक युग के विरोधाभासों को तार सप्तक के समकालीन कवि श्री नेमीचंद जैन ने सशक्त अभिव्यक्ति दी है । आज बुद्धि और हृदय, ज्ञान तथा कर्म में परस्पर सहसंबंधी न होकर विरोधी हो गए हैं। वे आधुनिक युग को संघर्षो का युग और संक्राति काल मानते हैं। वे संक्रातिकाल की परंपरागत मान्यताओं का विश्लेषण इस प्रकार से करते हैं –**''कवि सृष्टा है/वह क्यों गाए इस वर्तमान के, अति कुत्सित वीभत्स/अंधेरे के,जड़ता के/काले काले वृद्ध गीत/जब देख रह, उसके अधमुँहे नयन/क्षितिज के पार दूर/गरिमा के गौरव से मण्डित स्वर्णिम अतीत।''**31

कवियों के कवि श्री शमशेर बहादुर सिंह का काव्य वैविध्यपूर्ण हैं। वे कला के संघर्ष को समाज के संघर्ष के जोड़कर देखते हैं। वे प्रतिनिधि प्रगतिशील प्रयोगवादी कवि हैं। वे मार्क्सवाद की वैचारिकी से आधार ग्रहण कर सामाजिक चेतना को अभिव्यक्त करते हैं– **''गाओ!/वह मजदूर किसानों के स्वर कठिन हठी/कवि हे, उनमें अपना हृदय मिलाओ/उनके मिट्टी के तन में,है अधिक आग/है अधिक ताप/उसमें कवि हे/अपने विरह–मिलन के पाप जलाओ/काट बुर्जुआ भावों की गुमठी को गाओ।''**32

साठोत्तरी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर श्री गोरख पाण्डेय जी ने आजादी के बाद की स्थिति के लिए भ्रष्ट राजनेताओं को जिम्मेदार ठहराते हुए उन्हें कटघरे मे खड़ा करते है। भ्रष्ट राजनेता और पूंजीपति सर्वहारा वर्ग के मन को भयाक्रांत कर शोषण करता रहता है। किंतुभय को साधन मानने वाले इन शोषणकर्ताओं को भी अलग तरह का भय है, कहीं ये सर्वहारा वर्ग संगठित होकर उनसे डरना बंद न कर दे–''**तमाम धन दौलत,गोला बारूद,पुलिस फौज के बावजूद/वे डरते हैं कि एक दिन निहत्थे और गरीब लोग/उनसे डरना बंद कर देंगे।''**33 इसी प्रकार **कैलास बाजपेयी** ने 'खुशहाल सपने 'कविता में झूठे आश्वासन और झूठे नारों वाले भ्रष्ट नेताओं व्यंग्य किया है–**'झूठे नारों और खुशहाल सपनों से लदी/बैलगाड़ियॉ वर्षों से जनपथ पर आ जा रही है।''**34

आजादी के बाद भ्रष्ट पदलोलुप नेताओं के पूंजीपतियों के साथ सांठ गॉठ और उनके झूठे आश्वासन और झूठे नारों से गरीब जनता का मोहभंग हो गया। समकालीन कविता में आजादी से मोहभंग की काव्यमय व्यथा कथा है। आजादी के बाद गांधी जी की सत्य ,अहिंसा, सर्वधर्म सब कुछ प्राय लुप्त सा हो गया। गांधीवाद का मुखौटा पहने भ्रष्ट राजनेताओं पर व्यग्य करते हुए विष्णुचंद्र शर्मा ने अपनी कविता 'आयात निर्यात' मे इसी ओर संकेत किया है– **''हमारी स्वाधीनता के वीर सिपाही/शराब औ गांजे के परमिट बेच रहे हैं/हैदराबाद के म्युजियम मे एक घड़ी है/जिसमें से गांधी हर घण्टे... आते और लौट जाते/स्वामी दयानंद का सत्यार्थ प्रकाश और तिलक का गीता रहस्य/बनियों ने खरीद लिया है।''**35

**उपसंहार**

सचमुच साहित्य और समाज मे घनिष्ठ संबंध होता है। किसी सी साहित्य से उसके समाज का और किसी भी समाज से उसके साहित्य की प्रकृति को समझा जा सकता है। एक सच्चा साहित्यकार युगबोध का कुशल समीक्षक होता है। उसमें अपने समकालीन समाज में प्रचलित रूढ़ियों तथा व्याप्त विसंगतियों से विग्रह लेने की क्षमता होती है। इस परिप्रेक्ष्य मे यदि हम समकालीन काव्य साहित्य का अनुशीलन करते हैं तो इसमे व्यापक युगबोध का चित्रण मिलता है। दीर्घ अवधि के संघर्षोपरांत मिली स्वाधीनता की पृष्ठभूमि में स्वच्छ और सुखद समाज की परिकल्ना की गई थी, लेकिन वह परिकल्पना साकार न हो सकी। भारतीय जन–मानस ब्रिटिश साम्राज्य के शोषण चक्र से किसी तरह निकल कर पदलोलुप,स्वार्थी राजनेताओं और पूंजीपतियों के शोषण चक्र में फॅस गया। समाज मे गरीबी,अशिक्षा,बेरोजगारी, भय, कुण्ठा, जीवन के वितृष्णा,अकर्मण्यता और असुरक्षा जैसी भयावह विसंगतियों से जन–जीवन जर्जर होने लगा। मानवीय मूल्यों का अधःपतन होने लगा।

इन सभी सामाजिक–राजनीतिक विसंगतियों पर समकालीन कवियों ने अपने काव्य की पैनी धार से तीव्र प्रहार किये हैं।उनका काव्य कल्पना प्रसूत न होकर भोगे हुए यथार्थ का व्यापक चित्रण है। समकालीन काव्यधारा के प्रमुख हस्ताक्षर सर्वश्री अज्ञेय जी,मुक्तिबोध, भवानी प्रसाद मिश्र, बाबा नागार्जुन, रघुवीर सहाय, धूमिल, दुष्यंत कुमार,गिरिजा कुमार माथुर, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, धर्मवीर भारती, केदारनाथ अग्रवाल, कुंवर नारायण, नरेश मेहता, श्रीकांत वर्मा, शमशेर बहादुर सिंह जी आदि ऐसे समर्थ युग–समाज सचेतक कवि हैं जिनकी कविताओं मे स्वतंत्रता पश्चात् छटपटाते साधारण जन की व्यथा–कथा है। समकालीन काव्यधारा के सभी कवि वास्तव में जन कवि हैं। समकालीन कवियों का उपरोक्त सामाजिक –राजनीतिक व्यवस्था में बदलाव हेत समग्रतः आह्वान मुक्तिबोध के शब्दों में– **''अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे उठाने ही होंगे/तोड़ने होंगे ही गढ़ और मठ सब/पहुॅचना होगा दुर्गम पहाड़ों के उस पार/तब कहीं देखने मिलेंगी हमको ...अरुण कमल एक।''**36

**संदर्भ सूचीः**


1.इन्द्रधनु रौंदे हुए येः अज्ञेयः अज्ञेय का काव्यःजीवन सत्य और दर्शनः डॉ. मीता शर्मा पंचशील प्रकाशन जयपुर पृ. 63
2. समकालीन हिंदी कविताः संपां. परमानंद श्रीवास्तवः साहित्य अकादमी प्रकाशनः पृ.25
3. अज्ञेय : संकलित कविताएॅः चयनः नामवर सिंह, नेशलन बुक ट्रस्ट पृ 90
4. अंधेरे मेंः मुक्तिबोध रचनावलीः भाग दो :पृ. 319
5. अंधेरे मेंः मुक्तिबोध रचनावलीः भाग दो :पृ. 319
6 अंधेरे मेंः मुक्तिबोध रचनावलीः भाग दो :पृ. 326
7. अंधेरे मेंः मुक्तिबोध रचनावलीः भाग दो :पृ. 329–330
8. अंधेरे मेंः मुक्तिबोध रचनावलीः भाग दो :पृ. 332
9. जाहिल के बानेः भवानी प्रसाद मिश्र : कविता कोश. आर्ग .
10. गीत फरोश :भवानी प्रसाद मिश्र, दूसरा सप्तकः अज्ञेय पृ. 36
11. नागार्जुन और हमारा लोकतेत्रः मनोज कुमार सिंहः अपनी माटी, त्रैयमासिक पत्रिका अक्टूबर 2020
12. समकाली काव्य संकलनः संपा. प्रभाकर श्रोत्रियः म.प्र.हिन्दी ग्रंथ अकादमी पृ.49
13. वही पृ. 49
14. वही पृ. 70
15. वही पृ.71
16. वही पृ. 70
17. साये में धूप : दुष्यंत कुमार , पृ.13
18. साये में धूप : दुष्यंत कुमार , पृ.23
19. बीस साल बाद संसद से सड़क तक : धूमिल, राजकमल प्रकाशन पृ.11–12
20. रोटी और संसदः कल सुनना मुझेः धूमिलः राजकमल प्रकाशन
21 अकाल दर्शलः संसद से सड़क तक : धूमिल, राजकमल प्रकाशन पृ.19
22. शहर में सूर्यास्तः संसद से सड़क तक : धूमिल, राजकमल प्रकाशन पृ.47
23. दो पाटों की दुनियाःगिरिजा कुमार माथुर, तार सप्तकः अज्ञेय पृ. 172
24. साठोत्तरी हिंदी कविता में राष्ट्रीय–सामाजिक चेतनाः डॉ. नरेश कुमार वर्मा पृ.116
25. गर्म हवाएॅः सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ,पृ. 79
26. सौंदर्यबोधःसर्वेश्वर दयाल सक्सेना, तार सप्तकः अज्ञेय पृ. 229
27. वहीः पृ.230
28 टूटा पहियाः धर्मवीर भारती ,समकालीन हिंदी कविताः संपां. परमानंद श्रीवास्तवः साहित्य अकादमी प्रकाशनःपृ..89
29.'एक उठा हुआ हाथ' भारत भूषण अग्रवाल, अज्ञेय का काव्यःजीवन सत्य और दर्शनः डॉ. मीता शर्मा पंचशील प्रकाशन जयपुर पृ. 22
30. 'हड्डियों का तापः' डॉ.रामविलास शर्माः तार सप्तकःपृ. 206
31. कवि गाता हैः नेमिचन्द जैनः तार सप्तक :अज्ञेय पृ.56
32. छायावादोत्तर हिन्दी कविताःडॉ. रमाकांत शर्मा पृ. 376
33. साठोत्तरी हिंदी कविता में राष्ट्रीय–सामाजिक चेतनाः डॉ. नरेश कुमार वर्मा पृ.73
34 वही पृ.74
35. वही पृ.123
36. अंधेरें मेंः मुक्तिबोध रचनावलीः भाग–दो पृ. 348

# SOCIAL STRUCTURE AND SOCIAL CHANGE

**Dr . HEMLATA MAHAWAR**
Assistant Professor, Sociology
Maharana Pratap Govt. P.G. College,
Chittorgarh, Rajasthan

**Abstract:**

"Social change is the alteration in the social order of a society. Changes in social institutions, nature, social relations or social behaviours are included in social change. Social change refers to the social progress or sociocultural evolution. Social change may be driven by cultural, religious, economic, scientific or technological forces. Two types of sources are there for social change. One is random or unique factors such as climate, weather, or the presence of specific groups of people. Another one is systematic factors. Suppose, successful development has general requirements, like stable and flexible government, free and available resources, and a diverse social organization of society. As well as studying the transmission of occupations, studies have examined the socially structured patterns through which this transmission is shaped, through mediating variables such as schooling, parental household resources, sibling order, military service, first job and so forth. This paper examine the theories of social structure and social change."

**Keywords:** Social change, society, relations, development, social structure.

## Social Structure

"Social structure might seem the most important concept in sociology, and one of the major concepts in social science more generally, it is something of an 'absent presence' with many theorists addressing the issue only tangentially and with sustained attention to conceptual understanding of the nature of social structures attended to by only relatively few authors (Crothers, 1996). The history of the concept of social structure in sociology (and outside) is a topic addressed briefly here only to indicate the historical development of conceptual work on it (see Callinicos, 2007; Crothers, 1996, 2004)."

"Phases in the development of sociological theory concerning social structure has been described in the references just noted. Many early accounts of social structure depicted a sequence of three or four successive types beginning with hunter-gatherer bands and encompassing empires, and civilisations, together with the unique features of Western modernity. As empirical sociology developed with the work of the Chicago school (and more generally in community studies) in the interwar years more empirically based (but still dynamic) accounts were developed. Immediately before, during and after the world war 2 period the functionalist approach (partially adapted by Merton from anthropological models to better fit with more complex societies) switched attention from over-time change to understandings of how social structures fitted together and how they worked as structures. In particular, structures were seen as often operating 'behind the backs' of the people in them and were laced together in considerable part through 'latent functions' that were not always immediately obvious. By the 1970s, sociological theorists began to distance themselves from some of the determinism associated with previous approaches, and social structures began to be seen as more complex performances that arose out of the interplay between people's agency and the social environments shaping them and in turn being formed by individual actions. The two most prominent of these theorists were Pierre Bourdieu and Anthony Giddens (although many others reinforced this approach) and these were sometimes labeled as 'reproduction, practise or structurationist theorists. Since then, an array of commentary has ensued which has

elicited (and partially resolved) many of the difficulties in the analyses of these theorists – Giddens fails to develop a convincing rendition of social structure whereas Bourdieu, which attempting valiantly to overcome some of the dichotomies which constrain sociological analyses, overemphasises structural determinants. Moreover, sharp critique of any collectivist models continue with many sociologists unprepared to admit the existence of collectivities other than as representations held at a micro-social level. Moreover, while 'post-structurationist' approaches (such as the work of Margaret Archer and Nicos Mouzelis and a range of commentators) seem to have developed sophisticated argumentation, it has yet to be widely accepted. Indeed, there is an argument that – strangely – social theorists tend to shy away from direct treatment of social structure."

"Exposition of analytical tools in sociology (as much as any other sociology) needs to be accompanied with rigorous criticism as to their adequacy, but this too has to be eschewed in this presentation. The emphasis rather is on providing tools for use. Sociology might seem to be stymied without a working consensus on what the ontological structures of social structures might be with debate structured by some sophisticated conceptions of collectivities on the one hand (e.g. Elder-Vass, 2010: also Searle, 2010) and vigorous renditions of methodological individualism on the other (e.g. Martin and Dennis, 2010: see also Martin, 2009). A major difficulty in developing adequate conceptions of social collectivities are the arguments deployed against their very possibility: if it is argued that collectivities do not exist in makes little sense to pursue further considerations of them – a self-fulfilling prophecy. And it is possible that ultimately a collectivist position will prevail, but it should not prevail without sufficient weight being given the effort of endeavouring to establish the possibility that collectivities might meaningfully exist. However, it is not entirely the task of an empirically-orientated discipline to worry too much about the philosophical status of its concepts. The empirically-orientated study of social structures need not await the final verdict of its more philosophical associated discussions, although it is good if the two can develop alongside and in interaction with each other."

"Unfortunately, the more empirically-orientated study of social structure flows within several channels which are not entirely linked to each other. Some approaches hold rather different conceptions of the same term - social structure – while others pursue the study of social structure using other terminologies."

"Social structures are at least somewhat-enduring sets of relationships amongst a group of roles which emerge, are maintained, change and eventually cease. They vary enormously between tightly drilled formations such as elite combat units or sports teams (which operate like highly oiled social machines with their social structure clearly somewhat embodied in the team's physical and behavioural routines) to loosely organised networks or relationships which may operate in subtle and usually unglimpsed ways, but nevertheless are framed by structure. While some social structures are adorned with a massive cultural apparatus or largely focused on the development of cultural goods, others are very lean. Whereas one extreme type is the endlessly interacting face to face groups (e.g. 'primary groups') the other extreme are aggregations where people belong to social categories (sometimes widely spread across space) which shape their attitudes and behaviour but which are not (or seldom) reinforced by interaction – so some social structures are local while others are cosmopolitan. Some are small and others vast in their extension over space and/or time."

"They differ in the way their 'footprint' is distributed across various micro-level social situations and underlying natural environments. Perhaps above all, different social structures vary in their self-awareness and in their capacity for collective or planned action. An interpenetrating set of social structures are the social forms in which people live out their lives

and which to varying degrees are built into specific social formations such as communities or societies."

**Social Change**

"Social change, in sociology, the alteration of mechanisms within the social structure, characterized by changes in cultural symbols, rules of behaviour, social organizations, or value systems. Throughout the historical development of their discipline, sociologists have borrowed models of social change from other academic fields. In the late 19th century, when evolution became the predominant model for understanding biological change, ideas of social change took on an evolutionary cast, and, though other models have refined modern notions of social change, evolution persists as an underlying principle."

"Other sociological models created analogies between social change and the West's technological progress. In the mid-20th century, anthropologists borrowed from the linguistic theory of structuralism to elaborate an approach to social change called structural functionalism. This theory postulated the existence of certain basic institutions (including kinship relations and division of labour) that determine social behaviour. Because of their interrelated nature, a change in one institution will affect other institutions."

"Various theoretical schools have emphasized different aspects of change. Marxist theory suggests that changes in modes of production can lead to changes in class systems, which can prompt other new forms of change or incite class conflict. A different view is conflict theory, which operates on a broad base that includes all institutions. The focus is not only on the purely divisive aspects of conflict, because conflict, while inevitable, also brings about changes that promote social integration. Taking yet another approach, structural-functional theory emphasizes the integrating forces in society that ultimately minimize instability."

"Social change can evolve from a number of different sources, including contact with other societies (diffusion), changes in the ecosystem (which can cause the loss of natural resources or widespread disease), technological change (epitomized by the Industrial Revolution, which created a new social group, the urban proletariat), and population growth and other demographic variables. Social change is also spurred by ideological, economic, and political movements."

**The changing social order**

"Social change in the broadest sense is any change in social relations. Viewed this way, social change is an ever-present phenomenon in any society. A distinction is sometimes made then between processes of change within the social structure, which serve in part to maintain the structure, and processes that modify the structure (societal change)."

"The specific meaning of social change depends first on the social entity considered. Changes in a small group may be important on the level of that group itself but negligible on the level of the larger society. Similarly, the observation of social change depends on the time span studied; most short-term changes are negligible when examined in the long run. Small-scale and short-term changes are characteristic of human societies, because customs and norms change, new techniques and technologies are invented, environmental changes spur new adaptations, and conflicts result in redistributions of power."

"This universal human potential for social change has a biological basis. It is rooted in the flexibility and adaptability of the human species—the near absence of biologically fixed action patterns (instincts) on the one hand and the enormous capacity for learning, symbolizing, and creating on the other hand. The human constitution makes possible changes that are not biologically (that is to say, genetically) determined. Social change, in other words, is possible

only by virtue of biological characteristics of the human species, but the nature of the actual changes cannot be reduced to these species traits."

**Historical background**

"Several ideas of social change have been developed in various cultures and historical periods. Three may be distinguished as the most basic: (1) the idea of decline or degeneration, or, in religious terms, the fall from an original state of grace, (2) the idea of cyclic change, a pattern of subsequent and recurring phases of growth and decline, and (3) the idea of continuous progress. These three ideas were already prominent in Greek and Roman antiquity and have characterized Western social thought since that time. The concept of progress, however, has become the most influential idea, especially since the Enlightenment movement of the 17th and 18th centuries. Social thinkers such as Anne-Robert-Jacques Turgot and the marquis de Condorcet in France and Adam Smith and John Millar in Scotland advanced theories on the progress of human knowledge and technology."

"Progress was also the key idea in 19th-century theories of social evolution, and evolutionism was the common core shared by the most influential social theories of that century. Evolutionism implied that humans progressed along one line of development, that this development was predetermined and inevitable, since it corresponded to definite laws, that some societies were more advanced in this development than were others, and that Western society was the most advanced of these and therefore indicated the future of the rest of the world's population. This line of thought has since been disputed and disproved."

"Following a different approach, French philosopher and social theorist Auguste Comte advanced a law of three stages, according to which human societies progress from a theological stage, which is dominated by religion, through a metaphysical stage, in which abstract speculative thinking is most prominent, and onward toward a positivist stage, in which empirically based scientific theories prevail."

"The most encompassing theory of social evolution was developed by Herbert Spencer, who, unlike Comte, linked social evolution to biological evolution. According to Spencer, biological organisms and human societies follow the same universal, natural evolutionary law: 'a change from a state of relatively indefinite, incoherent, homogeneity to a state of relatively definite, coherent, heterogeneity.' In other words, as societies grow in size, they become more complex; their parts differentiate, specialize into different functions, and become, consequently, more interdependent."

"Evolutionary thought also dominated the new field of social and cultural anthropology in the second half of the 19th century. Anthropologists such as Sir Edward Burnett Tylor and Lewis Henry Morgan classified contemporary societies on an evolutionary scale. Tylor postulated an evolution of religious ideas from animism through polytheism to monotheism. Morgan ranked societies from "savage" through "barbarian" to "civilized" and classified them according to their levels of technology or sources of subsistence, which he connected with the kinship system. He assumed that monogamy was preceded by polygamy and patrilineal descent by matrilineal descent."

"Karl Marx and Friedrich Engels too were highly influenced by evolutionary ideas. The Marxian distinctions between primitive communism, the Asiatic mode of production, ancient slavery, feudalism, capitalism, and future socialism may be interpreted as a list of stages in one evolutionary development (although the Asiatic mode does not fit well in this scheme). Marx and Engels were impressed by Morgan's anthropological theory of evolution, which became evident in Engels's book The Origin of the Family, Private Property, and the State (1884)."

"The originality of the Marxian theory of social development lay in its combination of dialectics and gradualism. In Marx's view social development was a dialectical process: the transition from one stage to another took place through a revolutionary transformation, which was preceded by increased deterioration of society and intensified class struggle. Underlying this discontinuous development was the more gradual development of the forces of production (technology and organization of labour)."

"Marx was also influenced by the counter current of Romanticism, which was opposed to the idea of progress. This influence was evident in Marx's notion of alienation, a consequence of social development that causes people to become distanced from the social forces that they had produced by their own activities. Romantic counter progressivism was, however, much stronger in the work of later 19th-century social theorists such as the German sociologist Ferdinand Tönnies. Tönnies distinguished between the community (Gemeinschaft), in which people were bound together by common traditions and ties of affection and solidarity, and the society (Gesellschaft), in which social relations had become contractual, rational, and non emotional."

"Émile Durkheim and Max Weber, sociologists who began their careers at the end of the 19th century, showed ambivalence toward the ideas of progress. Durkheim regarded the increasing division of labour as a basic process, rooted in modern individualism, that could lead to anomie, or lack of moral norms. Weber rejected evolutionism by arguing that the development of Western society was quite different from that of other civilizations and therefore historically unique. The West was characterized, according to Weber, by a peculiar type of rationality that had brought about modern capitalism, modern science, and rational law but that also created, on the negative side, a 'disenchantment of the world' and increasing bureaucratization."

"The terms modern and modernization have positive connotations; it sounds good to modernize and to be modern. Modernization implies that progress has been made and is continuing to be made, and who would not want progress? Yet modernization also has a downside, as we will see in this section and in the later discussion of the environment."

"A related problem with the terms and concepts of modern and modernization is that many people think of Western nations when considering the most modern nations in the world today. This implies that Western society is the ideal to which other societies should aspire. While there are many good things about Western societies, it is important to avoid the ethnocentrism of assuming that Western societies are better because they are more modern. In fact, one reason that many people in the Middle East and elsewhere dislike the United States is that they resent the 'Westernization' of their societies from the influence of the United States and other wealthy Western nations. When they see Coca-Cola and Pepsi logos and the McDonald's golden arches in their nations, they fear Western influence and the loss of their own beliefs and traditions."

"These caveats notwithstanding, societies have become much more modern over time, to put it mildly. We thus cannot fully understand society and social life without appreciating how societies have changed as they have become more modern. Not surprisingly, sociologists have recognized the importance of modernization ever since the discipline of sociology began in the 19th century, and much of the work of sociology's founders—Émile Durkheim, Max Weber, Karl Marx, and others—focused on how and why societies have changed as they became more modern."

"We can draw on their efforts and related work by later sociologists and by anthropologists to develop an idea of the differences modernization has made for societies and

individuals. Several dimensions and effects of modernization seem apparent (Nolan & Lenski, 2009). First, as societies evolve, they become much larger and more heterogeneous. This means that people are more different from each other than when societies were much smaller, and it also means that they ordinarily cannot know each other nearly as well. Larger, more modern societies thus typically have weaker social bonds and a weaker sense of community than small societies and place more of an emphasis on the needs of the individual."

"We can begin to appreciate the differences between smaller and larger societies when we contrast a small college of 1,200 students with a large university of 40,000 students. Perhaps you had this contrast in mind when you were applying to college and had a preference for either a small or a large institution. In a small college, classes might average no more than 20 students; these students get to know each other well and often have a lot of interaction with the professor. In a large university, classes might hold 600 students or more, and everything is more impersonal. Large universities do have many advantages, but they probably do not have as strong a sense of community as is found at small colleges."

"A second aspect of modernization is a loss of traditional ways of thinking. This allows a society to be more creative and to abandon old ways that may no longer be appropriate. However, it also means a weakening or even ending of the traditions that helped define the society and gave it a sense of identity."

"A third aspect of modernization is the growth of individual freedom and autonomy. As societies grow, become more impersonal, and lose their traditions and sense of community, their norms become weaker, and individuals thus become freer to think for themselves and to behave in new ways. Although most of us would applaud this growth in individual freedom, it also means, as Émile Durkheim (1895/1962) recognized long ago, that people feel freer to deviate from society's norms and thus to commit deviance. If we want a society that values individual freedom, Durkheim said, we automatically must have a society with deviance."

"Weber (1921/1978) was also concerned about modernization. The hallmarks of modernization, he thought, are rationalization, a loss of tradition, and the rise of impersonal bureaucracy. He despaired over the impersonal quality of rational thinking and bureaucratization, as he thought it was a dehumanizing influence."

"Durkheim (1893/1933) took a less negative view of modernization. He certainly appreciated the social bonds and community feeling, which he called mechanical solidarity, characteristic of small, traditional societies. However, he also thought that these societies stifled individual freedom and that social solidarity still exists in modern societies. This solidarity, which he termed organic solidarity, stems from the division of labor, in which everyone has to depend on everyone else to perform their jobs. This interdependence of roles, Durkheim said, creates a solidarity that retains much of the bonding and sense of community found in premodern societies."

"We have already commented on important benefits of modernization that are generally recognized: modernization promotes creativity and individual freedom and autonomy. These developments in turn usually mean that a society becomes more tolerant of beliefs and behaviors that it formerly would have disapproved and even condemned. Modern societies, then, generally feature more tolerance than older societies. Many people, undoubtedly including most sociologists, regard greater tolerance as a good thing, but others regard it as a bad thing because they favor traditional beliefs and behaviors."

"Beyond these abstract concepts of social bonding, sense of community, and tolerance, modern societies are certainly a force for both good and bad in other ways. They have produced scientific discoveries that have saved lives, extended life spans, and made human existence

much easier than imaginable in the distant past and even in the recent past. But they have also polluted the environment, engaged in wars that have killed tens of millions, and built up nuclear arsenals that, even with the end of the Cold War, still threaten the planet. Modernization, then, is a double-edged sword. It has given us benefits too numerous to count, but it also has made human existence very precarious."

**Sociological Perspectives on Social Change**

"Sociological perspectives on social change fall into the functionalist and conflict approaches. As usual, both views together offer a more complete understanding of social change than either view by itself (Vago, 2004)."

| | |
|---|---|
| Theoretical perspective | Society is in a natural state of equilibrium. Gradual change is necessary and desirable and typically stems from such things as population growth, technological advances, and interaction with other societies that brings new ways of thinking and acting. However, sudden social change is undesirable because it disrupts this equilibrium. To prevent this from happening, other parts of society must make appropriate adjustments if one part of society sees too sudden a change. |
| Conflict theory | Because the status quo is characterized by social inequality and other problems, sudden social change in the form of protest or revolution is both desirable and necessary to reduce or eliminate social inequality and to address other social ills. |

**The Functionalist Understanding**

"The functionalist understanding of social change is based on insights developed by different generations of sociologists. Early sociologists likened change in society to change in biological organisms. Taking a cue from the work of Charles Darwin, they said that societies evolved just as organisms do, from tiny, simple forms to much larger and more complex structures. When societies are small and simple, there are few roles to perform, and just about everyone can perform all of these roles. As societies grow and evolve, many new roles develop, and not everyone has the time or skill to perform every role. People thus start to specialize their roles and a division of labor begins. As noted earlier, sociologists such as Durkheim and Tönnies disputed the implications of this process for social bonding and a sense of community, and this basic debate continues today."

"Several decades ago, Talcott Parsons (1966), the leading 20th-century figure in functionalist theory, presented an equilibrium model of social change. Parsons said that society is always in a natural state of equilibrium, defined as a state of equal balance among opposing forces. Gradual change is both necessary and desirable and typically stems from such things as population growth, technological advances, and interaction with other societies that brings new ways of thinking and acting. However, any sudden social change disrupts this equilibrium. To prevent this from happening, other parts of society must make appropriate adjustments if one part of society sees too sudden a change."

"The functionalist perspective has been criticized on a few grounds. The perspective generally assumes that the change from simple to complex societies has been very positive, when in fact, as we have seen, this change has also proven costly in many ways. It might well have weakened social bonds, and it has certainly imperiled human existence. Functionalist theory also assumes that sudden social change is highly undesirable, when such change may in fact be needed to correct inequality and other deficiencies in the status quo."

**Conflict Theory**

"Whereas functional theory assumes the status quo is generally good and sudden social change is undesirable, conflict theory assumes the status quo is generally bad. It thus views sudden social change in the form of protest or revolution as both desirable and necessary to reduce or eliminate social inequality and to address other social ills. Another difference between the two approaches concerns industrialization, which functional theory views as a positive development that helped make modern society possible. In contrast, conflict theory, following the views of Karl Marx, says that industrialization exploited workers and thus increased social inequality."

"In one other difference between the two approaches, functionalist sociologists view social change as the result of certain natural forces, which we will discuss shortly. In this sense, social change is unplanned even though it happens anyway. Conflict theorists, however, recognize that social change often stems from efforts by social movements to bring about fundamental changes in the social, economic, and political systems. In his sense social change is more planned, or at least intended, than functional theory acknowledges."

**Conclusion**

"There is, then, a diversity of opinion on what social structure is. As is evident from the above, the presumed nature of structure is intimately connected to another issue: How is sociology to develop theory about social structure? Homans and Coleman argue the "covering law" approach: Find the highest level propositions from which propositions describing empirical regularities can be deduced. Merton and Goode stress the 'multiple paradigm, middle-range approach': Develop specialized theories about structures in diverging substantive context. Blau advocates what can be termed "the dimension-principle" approach: Discover the key dimensions, such as differentiation and integration, of social structure and articulate the principles that describe the operation of these dimensions. Critics of conflict theory say that it exaggerates the extent of social inequality and that it sometimes overemphasizes economic conflict while neglecting conflict rooted in race/ethnicity, gender, religion, and other sources. Its Marxian version also erred in predicting that capitalist societies would inevitably undergo a socialist-communist revolution."

**References:**


1. Durkheim, É. (1933). The division of labor in society. London, England: The Free Press. (Original work published 1893).
2. Durkheim, É. (1962). The rules of sociological method (S. Lukes, Ed.). New York, NY: Free Press. (Original work published 1895).
3. Nolan, P., & Lenski, G. (2009). Human societies: An introduction to macrosociology (11th ed.). Boulder, CO: Paradigm.
4. Parsons, T. (1966). Societies: Evolutionary and comparative perspectives. Englewood Cliffs, NJ: Prentice Hall.
5. Tönnies, F. (1963). Community and society. New York, NY: Harper and Row. (Original work published 1887).
6. Vago, S. (2004). Social change (5th ed.). Upper Saddle River, NJ: Prentice Hall.
7. Weber, M. (1978). Economy and society: An outline of interpretive sociology (G. Roth & C. Wittich, Eds.). Berkeley: University of California Press. (Original work published 1921).
8. Bourdieu, P., & Wacquant, L. J. D (1992). An Invitation to Reflexive Sociology. Cambridge: Polity Press.
9. Calhoun, C., Meyer, M., & Scott, W. R. (eds). (1990). Structures of Power and Constraint: papers
10. in honor of Peter Blau. Cambridge: Cambridge University Press

11. Callinicos, A. (2007) Social theory: a historical introduction. (2nd ed.) Cambridge: Polity.
12. Coleman, J. (1990). Foundations of Social Theory. Massachusetts: Harvard University Press.
13. Coser, R. l. (1991). In Defense of Modernity: role complexity and individual autonomy. Stanford:
14. Stanford University Press.
15. Crothers, C (2011) Robert K Merton in George Ritzer and Jeffrey Stepnisky (eds.) Blackwell Companion to Contemporary Social Theorists
16. Hindess, B. (1989). Political Choice and Social Structure: an analysis of actors, interests and rationality. Aldershott, Hants, UK: Edward Elgar.
17. Lin, N. (2001) Social capital: a theory of social structure and action Cambridge, UK; New York: Cambridge University Press.
18. Lockwood, D. (1992). Solidarity and Schism: 'the problem of disorder' in Durkheimian and Marxist sociology. Oxford: Clarendon Press.
19. Lopez, Jose and John Scott (2000) Social structure. Philadelphia, PA: Open University Press.
20. Lopez, Jose (2003) Society and its metaphors: language, social theory and social structure. New York; London: Continuum.
21. Martin, John Levi (2009) Social Structures. Princeton, N.J.: Princeton University Press.
22. Martin, Peter J. and Alex Dennis (eds.) (2010) Human Agents and Social Structures
23. Manchester; New York: Manchester University Press.
24. Porpora, D. (1987). The Concept of Social Structure. Westport, CT: Greenwood Press.
25. Searle, John R. (2010) Making the social world: the structure of human civilization. Oxford; New York: Oxford University Press.
26. Sewell, W. H. jr. (2005). Logics of history: social theory and social transformation: Chicago: University of Chicago Press
27. Sing C. Chew, Sing and J. David Knottnerus (eds.) (2002) Structure, culture, and history: recent issues in social theory Lanham, Md.: Rowman & Littlefield Publishers.
28. Tilly, C (2008) Explaining social processes Boulder: Paradigm Publishers.
29. Weber, M. (1947). The Theory of Social and Economic Organisation. Glencoe, Ill.: Free Press.
30. Wilson, J. (1983). Social Theory. New Jersey: Prentice Hall.

# MEASURING THE LEVEL OF STRESS AMONG BANKING EMPLOYEES IN HARYANA

**Priyanka Arya**
Research Scholar
**Dr. Neelam Jain**
Professor (Supervisor)
Institute of Management Studies and Research
Maharshi Dayanand University, Rohtak

## Abstract

Banking sector stands as a pillar of strength for the development of our country. Being such a prominent sector in prevailing times, we must think about those who work hard day and night to keep this sector going on at its pace, that is the employees of banking sector. Growing mergers acquisitions and digitalization in the economy, employees of banking sector have been facing huge stress. This research intends to identify the level of stress being confronted by middle level employees in banking sector of Haryana. To accomplish this objective, data has been gathered using primary and secondary sources both. Primary data has been collected by distributing 300 questionnaires across the public and private sector banks of Haryana such as SBI, PNB, Bank of Baroda, ICICI, HDFC, Kotak Mahindra Bank. These banks have been selected on the basis of market capitalization rate. Out of 300 distributed questionnaires only 248 questionnaires were returned. Stress levels of employees have been accessed using 21 items of standard stress scale. Levels of stress have been bifurcated into three classes first being "low stress levels", second being "medium stress levels" and the third being "high stress levels". 33.1 % of employees are found to be facing low level of stress, 34.7 % of employees are found to be facing medium level of stress and 32.1 % employees are found to be facing high level of stress. While comparing the association of stress levels with categorical variables. Categorical variables such as "gender, education level, marital status and type of bank" were found to be significantly associated with stress levels.

**Key words:** banking employees, banking industry, personal life, stress, stress levels, stress management, work life

## Introduction

Banking industry is one of the humongous industries in our economy, which carries burden of the whole economy on its shoulder. With everyday new revolutions and changes in banking sector such as digitalisation, mergers and worldwide covid 19 pandemics. It has become very difficult for its workforce to cope up in such a dynamic environment. Which in turn makes its employees more stress full. Which makes it difficult for them to manage their work life and as well as maintaining a harmony between their personal life and work life. Stress also gives rise to so many other situations such as absenteeism, underperformance, unsound mind, usage of alcohol and drugs, being on medication, anxiety etc. which leads to more stress at the end, stress creates an imbalance between expectations and outcomes an individual seeks from himself. It is very important for all the organisations to identify the stress at initial stages, its sources and to use required interventions so as to reduce it and avoid the situation of burnout. "Hans Selye (1976), stated that Stress is the non-specific response of the body to any demands made upon it. It is an internal response where continued and prolonged stress may result in fatigue and tension leading to depression and anxiety (Selye, 1946)". This is the reason why stress is one of the most talked about phenomenon these days. Stress is spreading its wings way faster than one can imagine. It is even hard to identify stress at its initial stages. And when an individual recognises that he or she is stressed, it has already started to harm his or her health.

Therefore, it is very important to identify stress in an individual at its initial stage while it is easy to manage. It is also very important to recognize the level of stress in an individual so that interventions can be applied with respect to that level of stress an individual is facing. This particular research aims to quantity the stress levels of banking employees in Haryana who work at the middle level. This specific research also aims to bring out an association of demographic factors with the stress levels of banking employees. Such demographic factors are: gender, education level, matrimonial status and type of bank.

## Review of literature

There are numerous studies which has been conducted regarding the managing stress for employees in banking industry. The number of such studies is growing day by day likewise the phenomenon of stress. Studies are also being conducted with respect to the stress levels among banking employees.

(Robbins, 1986) studied the "Relationship between job satisfaction and occupational stress". In his study, it was found that the "job satisfaction and occupational stress is affected by a variety of factors such as job performance, loss of control over job etc." which increases dissatisfaction and increases stress in turn.

(Sumesh and Asha, 2010) conducted a study of 50 employees of Punjab National Bank. The motive of their study was to "find out stress levels and causes of stress among banking employees". In this research data has been analysed using percentages, graphs and tables. The above study concludes that stress levels of employees working as assistant managers, clerks and cashiers are high due to which employees are facing high level sleeping disorders, nausea and anxiety.

(Jamshed *et al.,*2011) concluded in his study that "The workplace is potentially an important source of stress for bankers because of the amount of time they spent in their respective banks."

(Malik, 2011) studied "Occupational Stress Faced by Public and Private Banking employees in Quetta city" objective of the study was to analyse the level of occupational stress that is being faced by banking employees. The researcher conducted the study on the sample of 200 employees of public sector banks and private sector banks. Conclusion of the study was that employees of private banking sector faced higher level of stress then those of public sector.

(Kumar and Sundaram, 2014) studied "Prevalence of stress level among Banking employees in urban Puducherry, India". The study was led to quantity the stress levels and its prevailing causes among banking employees. Study was conducted with the sample of 192 banking employees and data was analysed using cross-tabulations, mean scores, percentages and bar graphs. This study concluded that majority of banking employees were facing very high stress levels. Demographic variables such as age, gender, usage of alcohol, type of work had no significant association with respect to stress levels.

(Dhankar, 2015) in his study on "Occupational Stress in Banking Sector" objective of which was to identify the degree of stress among banking employees. Study was conducted on the sample of 200 employees from public and private sector banks of Karnal, Kurukshetra, Panipat and Sonipat. Data was analysed using mean score and percentages. The study concluded that there exists a high degree of stress among banking employees of above said cities.

(Yadav, 2017) conducted a study of 200 banking employees of public sector and regional rural banks in NCR. Drive of the study was to get the better understanding regarding the stress levels of banking employees. Data was analysed using bar graphs, percentages and mean scores. Study came to the conclusion by identifying that "the stress levels among banking employees were very high".

## Research objectives:

1. To measure the stress levels of banking employees in Haryana.
2. To study the association between stress levels and demographic factors such as gender, education level, marital status and type of bank.

## Research methodology

This study is descriptive as well as exploratory in nature. As exemplified by Creswell (2018) "the concept of descriptive studies; such studies are mostly conducted to explain a phenomenon of interest rather than making interpretations and judgments". This is what exactly has been explored in this particular study. Methodology which has been used to analyse the data in this study are cross-sectional tabulations, frequency distributions and percentages.

## Sample Design

Employees from both public and private sector banks has been selected for the study. Six banks have been selected for this study i.e., three public sector banks and three private sector banks each. Banks have been selected on the basis of market capitalisation rate. Banks selected for the following study are "SBI, PNB, Bank of Baroda" from public sector banks and "ICICI, HDFC, Kotak Mahindra bank" from private sector banks. Middle level banking employees have been selected for the study such as: managers, chief managers, officers and clerks.

## Data collection

Data has been gathered with the help of both "primary sources and secondary sources". Primary data has been collected using standard stress scale questionnaires on a five-point Likert scale. 21 item questionnaires had been distributed across six banks according to the sample design. A total of 300 questionnaires were circulated among the banking employees. Out of 300 questionnaires only 260 questionnaires were returned with a return rate of 86%. After data cleaning only 248 questionnaires were found to be authentic and reliable. 12 questionnaires were found having unengaged responses with zero standard deviation. Secondary data has also been collecting by using existing literature about the topic, books and articles.

## Survey instrument

Standard stress scale has been used to quantity the stress levels among the banking employees. Standard stress scale was reduced to 21 statements according to the study. Consistency of the 21 statements of questionnaire has been verified using Cronbach's alpha. Cronbach's alpha of 0.98 depicts that the results are more than satisfactory according to (Malhotra, 2002; Cronbach, 1951).

## Analysis

Description of sample respondents (Table:1)

| Description of sample respondents | | |
|---|---|---|
| Gender | | |
| Male | Female | Total |
| 172 | 76 | 248 |
| Educational qualification | | |
| Graduate | Post graduate | Total |
| 116 | 132 | 248 |
| Marital status | | |
| Married | Unmarried | Total |
| 200 | 48 | 248 |

| Type of bank | | |
|---|---|---|
| Public | Private | Total |
| 129 | 119 | 248 |

*Source: compiled by author after primary data analysis*

300 employees of "SBI, PNB, Bank of Baroda, ICICI bank, HDFC bank and Kotak Mahindra bank" have been selected as sample respondents for this study. 248 employees out of 300 employees responded to the questionnaires generously and authentically. In table no. 1 description of 248 employees have been given on the basis of reliable and authentic returned questionnaires. Out of 248 responses 172 were males and 76 were females, 116 were graduate and 132 were post graduates, 200 were married while 48 were unmarried and 129 were public sector employees and 119 were private sector employees.

Stress level among banking employees (Table: 2)

| Stress levels among banking employees | | |
|---|---|---|
| Stress level | frequency | percentage |
| Low level stress | 36 | 14.5 |
| Medium level stress | 70 | 28.2 |
| High level stress | 142 | 57.2 |
| total | 248 | 100 |

*Source: compiled by the author after primary data analysis*

Table no. 2 depicts that out of 248 employees 36 employees have been facing low stress levels, 70 employees have been facing medium stress levels and 142 employees have been facing high stress levels. Over all 57 % of the employees have been facing high stress levels.

**Table: 3**

Stress level of employees according to demographic variables

| Stress level according to demographic variables (frequencies) | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| Demographic variables | | Low | Medium | High | Total |
| Gender | Male | 28 | 54 | 90 | 172 |
| | Female | 8 | 16 | 52 | 76 |
| Educational Qualification | Graduate | 16 | 22 | 78 | 116 |
| | PG | 20 | 48 | 64 | 132 |
| Marital Status | Married | 24 | 42 | 134 | 200 |
| | Unmarried | 12 | 28 | 8 | 48 |
| Type of Bank | Private | 19 | 19 | 81 | 119 |
| | Public | 17 | 51 | 61 | 129 |

*Source: compiled by the author after primary data analysis*

stress levels with respect to gender: Either its "low stress levels, medium stress levels or high stress levels". Frequency of males facing any stress levels is more than that of the females. As can be seen 28 males have been facing low stress levels while only 8 females have been facing low stress levels, 54 males have been facing medium stress levels while 16 females have been

facing medium stress levels and 90 males have been facing high stress levels and 52 females have been facing high stress levels.

Stress levels with respect to educational qualification: 16 graduate employees have been facing low stress levels while 20 post graduate employees have been facing low stress levels, 22 graduate employees have been facing medium stress levels while 48 post graduate employees have been facing medium stress levels and 78 graduate employees have been facing stress levels and 64 post graduate employees have been facing high stress levels.

Stress levels with respect to marital status: 24 married employees have been facing low stress levels while 12 unmarried employees have been facing low stress levels, 42 married employees have been facing medium stress levels while 28 unmarried employees have been facing medium stress levels and 134 married employees have been facing high stress levels and 8 unmarried employees have been facing high stress levels.

Stress levels with respect to type of bank: 19 employees from private sector banks have been facing low stress levels while 17 employees from public sector banks have been facing low stress levels, 19 employees from private sector banks have been facing medium stress levels while 51 employees from public sector banks have been facing medium stress levels and 81 employees from private sector banks have been facing high stress levels and 61 employees from public sector banks have been facing high stress levels.

## Conclusion:

Moreover, from the above analysis this can be seen that 57% of the employees have been facing high stress levels and 36% of the employees have been facing medium stress levels. While comparing stress levels with respect to demographic variables, Stress levels of males are more than that of the females, graduate employees have been facing more stress then post graduate employees. When it comes to stress level with respect to marital status, it has become difficult to arrive to the conclusion as the sample of married and unmarried employees is not comparable as there is a huge difference between the number of married and unmarried employees. Therefore, it is difficult to compare the stress levels. This can be interpreted from the above analysis that the employees of private sector banks have been facing more stress than that of the public sector banks.

## References

Bois, H. (1986). Stephen P. Robbins : Organizational behavior. concepts, controversies and applications. 3rd ed., Englewood Cliffs, Prentice-Hall, 1986, 554 pp., ISBN 0-13-641549-0-01. *Relations Industrielles*, *41*(4), 879. https://doi.org/10.7202/050272ar

Dhankar, S. (2015). Occupational stress in banking sector. *International Journal of Applied Research*, *1*(8), 132–135.

Khattak , J. K., Khan , M. A., Haq, A. U., Arif, M., & Minhas, A. A. (2011). Occupational stress and burnout in Pakistan's banking sector. *African Journal of Business Management*, *5*(3), 810–817.

Kumar, S. G., & Sundaram, N. D. (2014). Prevalence of stress level among banking employees in urban Puducherry, India. *Industrial Psychiatry Journal*, *23*(1), 15. https://doi.org/10.4103/0972-6748.144938

Malik, N. (2011). *A Study on Occupational Stress Experienced by Private and Public Banks Employees in Quetta City*, *5*(8), 3063–3070. https://doi.org/10.5897/AJBM10.199

R., S., & K., A. (2010).A study of stress management of banking sector employees; An Empirical Analysis. *IJARIIE*, 10–15.

Yadav, R. (2017). A Study on Stress among Employees in Banking Industry. *International Journal of Research*, *5*(7), 8–13.

# पर्यावरण सुरक्षाः अस्तित्व के लिए चुनौती

**सुखराम भाभोर**
सहायक आचार्य, भूगोल विभाग गेस्ट फैकल्टी
राजकीय महाविद्यालय गांगड़तलाई,
बांसवाड़ा, राजस्थान

**प्रस्तावना –**

डॉ० विद्यानिवास मिश्र का कथन है, 'प्रकृति की संवेदनशीलता मानव को प्रभावित करती है, किन्तु जहाँ औद्योगिक विकास से अन्धे मानव ने प्रति की चुनौती को माना और इस पर विजय प्राप्त करने की इच्छा करने लगा, यहाँ से मानव और प्रकृति का संघर्ष हुआ, जिसका परिणाम सामने है। प्रकृति का सरंक्षण हम सब का पावन कर्तव्य है। हमें प्रकृति का उतना ही विदोहन करना चाहिए जिससे उसका सन्तुलन न बिगड़े। यदि मानव अब भी नहीं चेता तो हमारा विनाश निश्चित है।'

अतः यदि मानव प्रकृति के नियमों को समझकर, प्रकृति को गुरू मानकर उसके साथ सहयोग करता है और विशेष करके सब अवशिष्टों को प्रकृति को लौटाता है तो सृष्टि और मनुष्य स्वस्थ रह सकते हैं।

**पर्यावरण सुरक्षा का अर्थ–**

परि का अर्थ है– चारों ओर तथा आवरण का अर्थ है घेरे हुए। अर्थात् वह सब कुछ जो हमें चारों ओर से घेरे हुए हैं, पयावरण कहलाता है। इसी प्रकार सुरक्षा भी दो शब्दों के मेल से बना है। सुरक्षा सु का अर्थ है अच्छी प्रकार से तथा रक्षा का अर्थ है हिफाजत। अर्थात् अच्छी प्रकार से हिफाजत करना है। अतएव 'सुरक्षा' शब्द का तात्पर्य 'पर्यावरण सुरक्षा' से तात्पर्य अपने चारों ओर के वातावरण की हिफाजत व शुद्धि से है।

**ऐतिहासिक पृष्ठभूमि –**

सन् 1972 में सर्व प्रथम पर्यावरण की सुरक्षा के लिए स्टॉक होम में एक सम्मेलन हुआ जिसमें 113 देशों ने भाग लिया। इस सम्मेलन में सर्व सम्मति से यह निर्णय लिया गया कि पर्यावरण प्रदूषण विश्व की जनसंख्या के लिए अत्यन्त घातक है तथा इसे रोकना अत्यन्त आवश्यक है।

सन् 1977 में पर्यावरण प्रदूषण को रोकने के लिए संविधान में 42वाँ संशोधन किया गया। इस संशोधन के आर्टीकल 48ए के अनुसार यह घोषणा की गई कि वह राज्य सरकारों का फर्ज है कि वे वातावरण को सुधारें तथा वनों व जंगली जीवों को सुरक्षा प्रदान करें। आर्टीकल 51ए (जी) के अनुसार यह भी घोषणा की गयी कि देश के सभी नागरिकों का भी कर्तव्य है कि वे पर्यावरण को सुरक्षित रखें।

नवम्बर 1980 में हमारे देश में भी यहाँ की केन्द्रीय सरकार ने पर्यावरण विभाग की अलग से स्थापना करके इस दिशा में पहल की। सन् 1981 में वायु प्रदूषण को रोकने के लिए भारत सरकार ने 'एअर एक्ट' पास किया तथा केन्द्र व राज्य स्तर पर अनेक बोर्डो की स्थापना की गयी।

**विभिन्न बोर्डों द्वारा कुछ अन्य कार्य निम्न प्रकार हैं–**

**1. गोविन्द वल्लभ पन्त हिमालय पर्यावरण एवं विकास संस्था की स्थापना :–** केन्द्र सरकार ने सन् 1988 में अल्मोड़ा जिले में इस संस्था की स्थापना की।

**2. राष्ट्रीय बंजर भूमि विकास बोर्ड–** सन् 1985 में इस बोर्ड की स्थापना हो सके। भारत सरकार द्वारा की गयी जिससे बंजर भूमि का ग्रामीण क्षेत्रों में विकास

**3. राष्ट्रीय वन तथा वन्य जीव सम्बन्धी नीति का निर्माणः–** सन् 1988 में केन्द्र ने इस नीति का निर्माण किया जिससे पर्यावरण में प्राकृतिक सन्तुलन बना रहे।

**4.जैवमण्डल आरक्षित क्षेत्र–** केन्द्र ने कुछ वनों तथा कुछ वन–क्षेत्रों को आरक्षित कर दिया है जहां शिकार नहीं किया जा सकता, जैसे–भरतपुर में पक्षियों का केन्द्र सन् 1992 से इन क्षेत्रों के लिए अनेक योजनाएं स्वीकृत हुई हैं।

**5. हरित ईंधन योजना–** एक अप्रैल सन् 1995 से सीसा रहित पेट्रोल का प्रयोग अनिवार्य कर दिया गया है। इस योजना को हरित ईंधन योजना अर्थात् ग्रीन फ्यूल स्कीम कहा गया है। इससे जहरीली गैसे वायुमण्डल में नहीं मिल पायेग।

**6. अनुसन्धान, शिक्षा एवं प्रशिक्षण –** वातावरण तथा वन से सम्बन्धितमन्त्रालय के सहयोग से अनेक संस्थाएँ एवं विश्वविद्यालय अनुसन्धान कार्य कर रहे हैं और पर्यावरण शिक्षा एवं प्रशिक्षण का स्वरूप सामने आ रहा है।

**7. गंगा कार्य योजना–** प्रधानमन्त्री की अध्यक्षता में सन् 1985 में केन्द्रीय गंगा सत्ता की स्थापना की गयी है जो गंगा को स्वच्छ रखने की अनेक योजनाएँ क्रियान्वित करता है।

**8. प्रदूषण नियन्त्रण कानूनों का निर्माण–** कई कानून बनाए गए हैं। पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कानूनों का कड़ाई से पालन कराने के लिए 'केन्द्रीय प्रदूषण बोर्ड' तथा 'राज्य प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड' स्थापित किये गये हैं।

**9. राष्ट्रीय पर्यावरण जागरूकता अभियान–** पर्यावरण एवं वन मन्त्रालय अनेक संस्थाओं को जागरूकता अभियान चलाने के लिए वित्तीय सहायता देता है। सन् 1997–98 वित्तीय वर्ष में भारत सरकार ने 10.38 लाख की राशि स्वीकृति की थी।

**10. अन्य प्रयास –** केन्द्र व राज्य सरकारों ने कुछ अन्य प्रयास किये हैं जिसमें से कुछ उल्लेखनीय प्रयास ये हैं:

क. वनों के क्षेत्रफल का विकास।
ख. पर्यावरण सम्बन्धी पुरस्कारों की घोषणा ।
ग. जनजागरण।
घ. सचल पर्यावरणीय प्रयोगशाला।
ड़. उद्योग लगाने के पूर्व अनापत्ति प्रमाण–पत्र लेना।
च. पर्यावरण सम्बन्धी आन्दोलन (जैसे– चिपको आन्दोलन ) ।

उपरोक्त के अतिरिक्त हमारे देश की संस्कृति व सभ्यता भी पर्यावरण–सुरक्षा के प्रति जागरुक करती हैं। हमारे वेदों व उपनिषदों में नदी, पर्वत, वायु, पृथ्वी, जल, सूर्य, चन्द्रमा तथा वृक्ष–सभी को वन्दनीय माना गया है। हमारे धर्म व संस्कृति भी इसी बात पर जोर देते हैं कि हम संयम व नियमों का जीवन व्यतीत करें। लेकिन यहां पर यह कहना अनुचित न होगा कि 'मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों–ज्यों दवा की' क्योंकि पर्यावरण की सुरक्षा के लिए समय–समय पर भारत सरकार द्वारा अनेक नियम बनाए तो जा रहे हैं लेकिन उनका पूर्णतया पालन नहीं हो रहा है। विश्व–व्यापी सहयोगों, पर्यावरण–शिक्षा एवं जन–कल्याण समितियों द्वारा भिन्न–भिन्न प्रकार के नियम बनाए तो जा रहे हैं लेकिन उनका पूर्णतया पालन नहीं हो रहा है जब तक प्रत्येक व्यक्ति पर्यावरण–सुरक्षा के लिए उपरोक्त नियमों की स्वयं पर निज रुचि लेकर, अपना नैतिक अधिकार समझते हुए ईमानदारी से पर्यावरण की सुरक्षा में भागीदारी नहीं करेगा तब तक पर्यावरण–सुरक्षा असम्भव है।

**पर्यावरण सम्बन्धी पुरस्कार –**

| क्रम संख्या | पुरस्कार वितरण | प्रारम्भ करने का वर्ष |
|---|---|---|
| 1 | **इन्दिरा गाँधी पर्यावरण पुरस्कार**<br>पर्यावरण के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान करने वाले संगठन या व्यक्ति को प्रतिवर्ष दिया जाता है ।इसमें एक लाख रूपये नकद, एक रजत ट्राफी और प्रशस्ति–पत्र प्रदान किया जाता है। | 1987 |

| | | |
|---|---|---|
| 2. | **इन्दिरा गाँधी प्रियदर्शिनी वृक्षमित्र पुरस्कार**<br>इसमें पदक, प्रशस्ति–पत्र और पचास हजार रूपये नकद तक। | 1986 |
| 3. | **महावृक्ष पुरस्कार**<br>किसी विशेष प्रजाति के वृक्ष लगाने वाले को दिया जाता है। इसमें पच्चीस हजार रूपये नकद और प्रशस्ति–पत्र दिया जाता है। | 1993–1994 |
| 4. | **राजीव गाँधी पर्यावरण पुरस्कार**<br>यह पुरस्कार उन औद्योगिक इकाइयों को दिया जाता है, जिन्होंने स्वच्छ एवं प्रदूषण रहित प्रौद्योगिकी के विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया है। | 1993 |
| 5. | **अन्य पुरस्कार**<br>कुछ संस्थाएँ समय–समय पर अन्य पुरस्कारों की भी घोषणा करती हैं और नकद पुरस्कार अथवा प्रशस्ति–पत्र प्रदान करती है। | यथा समय |

**पर्यावरण सुरक्षा हेतु सुझाव –**

यदि प्रत्येक व्यक्ति पर्यावरण–सुरक्षा का संकल्प लेते हुए पर्यावरण–सुरक्षा मन से करना चाहता है तो उसे निम्न बातों का पालन करना चाहिएः

1. सौर–ऊर्जा (सोलर एनर्जी) का अधिक से अधिक उपयोग करना चाहिए।
2. सी० एन० जी० का अधिक से अधिक प्रयोग करना चाहिए क्योंकि वाहनों के धुएँ से सर्वाधिक प्रदूषण फैलता है।
3. पर्यावरण–सुरक्षा शिक्षा को पूर्ण रूप से ग्रहण करना चाहिए।
4. सरकार द्वारा बनाए गए नियमों का पूर्णतया पालन करना चाहिए ।
5. पर्यावरण–सुरक्षा के नियमों को प्रभावी बनाने के लिए होने वाले सम्बन्धित भ्रष्टाचार की जड़ों को उखाड़ना चाहिए ताकि नियमों का सुचारू रूप से संचालन हो सके।
6. पर्यावरण–सुरक्षा को अपना नैतिक कर्त्तव्य समझना चाहिए।
7. पर्यावरण सुरक्षा को मौलिक अधिकारों में सम्मिलित करना चाहिए।
8. पर्यावरण सुरक्षा के लिए जन साधारण को जाग्रत करना चाहिए।
9. वृक्षों के कटाव को रोकना चाहिए।
10. वृक्षारोपण करना चाहिए, क्योंकि पेड़ लगाना न केवल वायु को शुद्ध रखता है।

बल्कि जमीन को भी कटने से बचाता है तथा भोजन, ईंधन व अन्य आवश्यक उपकरणों की भी पूर्ति करता है।

11. कागज, वृक्षों से बनता है अतः कागज का प्रयोग भी सोच–समझकर करना चाहिए।
12. दैनिक हवन, यज्ञ, पूजा करनी चाहिए क्योंकि हवन करने से वायु की शुद्धि तो होती ही है साथ ही साथ बीमारी तथा कीटाणुओं का विनाश भी होता है।
13. प्लास्टिक की थैली की जगह जूट, कपड़े के थैले का प्रयोग करना चाहिए, क्योंकि प्लास्टिक पोलिथिन प्रदूषण को बढ़ाती है।
14. पानी का दुरूपयोग रोकना चाहिए, क्योंकि पानी हमारी प्रकृति की अमूल्य व सीमित सम्पदा है। इसका उपयोग हमें सोच–समझकर आवश्यकतानुसार ही करना चाहिए।
15. अपने आस–पास से खर–पतवार को जड़ से समाप्त करना चाहिए।
16. घर का कूड़ा गली में न फेंककर, कबाड़ी को ही देना चाहिए।
17. वर्षा के जल का संरक्षण कर उसे उपयोग में लाना चाहिए।

18. ऑक्सीटोसीन का प्रयोग बन्द करना चाहिए। प्रायः ऑक्सीटोसीन इन्जैक्शन दुधारी पशुओं को देते हैं तथा इसका प्रयोग फल व सब्जियों पर भी करते हैं, जो हर प्रकार से हानिकारक है
19. मांसाहार भी प्रदूषण को बढ़ाता है। अतः शाकाहारी बनने का संकल्प हो लेना चाहिए।
20. रासायनिक खाद व कीट नाशक, भूमि व पानी दोनों को प्रदूषित करते हैं । अतः इनके स्थान पर जैविक खाद का प्रयोग करना चाहिए।
21. सब्जियों व फलों के छिलके का उपयोग कूड़े में न फेंक कर, खाद बनाने में ही करना चाहिए।
22. डिस्पोजल वस्तुओं के स्थान पर काँच या धातु के बर्तनों का ही प्रयोग करना चाहिए।
23. मोर, हाथी, शेर, चीता, बाघ, तीतर, चील, साँप जैसे पर्यावरण जीवों की सुरक्षा करनी चाहिए।
24. जल स्त्रोतों को साफ–सुथरा रखना चाहिए। उसमें रासायनिक अवशिष्टों प्रवेश को रोकना चाहिए।
25. धूम्रपान भी वातावरण को प्रदूषित करता है। अतः धूम्रपान का निषेध करना चाहिए।
26. प्रसाधन सामग्री जैसे–लिपिस्टिक, शैम्पू, नेल पॉलिश आदि में क्लोरोप्लोरो कार्बन जैसी हानिकारक गैस होती है, जो ओजोन पर्त में छेद करती है। अतरू इनका उपयोग बहुत ही सीमित मात्रा में करना चाहिए।
27. उत्सवों, त्यौहारों व समारोह के अवसरों पर बहुत कम मात्रा में पटाखों का प्रयोग करना चाहिए।
28. अपने घर के आस–पास व घर की खुली जगह में गमले व पेड़–पौधे लगाने से भी पर्यावरण की सुरक्षा होती है।
29. परम्परागत ईंधन जैसे लकड़ी व कोयला की अपेक्षा विद्युत व प्राकृतिक गैस का उपयोग करना चाहिए।
30. वातावरण में धुंआ व शोर–शराबा बहुत अधिक सीमा तक बढ़ा हुआ है। अतः इस पर भी नियन्त्रण करना चाहिए।
31. जो व्यक्ति पर्यावरण सुरक्षा के नियमों की अनदेखी करने में रिश्वत ले रहे हैं, उनको जड़ से उखाड़ना चाहिए।
32. जन–संख्या वृद्धि पर भी अंकुश लगाना चाहिए।

## निष्कर्ष –

संक्षेप में निष्कर्ष रूप में मैं यह कहना चाहता हूं कि यदि प्रत्येक प्राणी उपरोक्त नियमों का निज रुचि, निज अधिकार व नैतिक कर्तव्य समझते हुए ईमानदारी से पालन करता है तो पर्यावरण की सुरक्षा निश्चित रूप से सम्भव है। इसका एक बहुत बड़ा कारण लोगों में इन अधिनियमों के प्रति जागरूकता मैं कमी माना जा रहा है। इसका मतलब ये है कि पर्यावरण से संबंधित मानव भौतिक, सामाजिक एवं दैनिक आस्था की जागरूकता विकसित की जाये यदि आँखे बंद कर बिना सोचे समझे मनुष्य इसी सोपान पर चलता गया इस ओर ध्यान नहीं दिया गया तो ये सभी उपरोक्त वर्णित कथन पर्यावरण को एक मोड़ पर लाकर खड़ा कर देगा जहाँ साँस लेना भी मुश्किल हो जायेगा, पीने को स्वच्छ पानी नहीं मिलेगा।

अतः समय की पुकार है कि हमें समय रहते सम्भलना होगा, जन–जागृति एवं जन आंदोलन चलाना होगा जिससे तेजी से गिरते पर्यावरण को बचाया जा सके। पर्यावरण संबंधी जागरूकता ही सबसे मुख्य हथियार है। जो पर्यावरण संकट से उभार सकती है।

## सन्दर्भ सूची

1. डॉ० जी० एस० वमार्रू पर्यावरण अध्ययन, लायल बुक डिपी, मेरठ ।
2. डॉ० भोपाल सिंह पर्यावरण शिक्षा, लायल बुक डिपो, मेरठ ।
3. Dr. V- B- Singh Environmental Studies, लायल बुक डिपो, मेरठ।
4. Dr. Rajendra Kumar- Environment Education, Laxmi Book Depot, Bhiwani.
5. डॉ० रामशकल पान्डे व डॉ० करूणा शंकर मिश्र भारतीय शिक्षा की समसामायिक समस्यायें, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–2
6. पी० डी० पाठक–भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–2

# E-INFORMATION RESOURCES IN LIBRARIES : AN QUANTATIVE ANALYSIS OF SELECTED UNIVERSITIES OF DELHI

**-Dr. Rubita Singh**
Department of Library Science
S.V.M.S.&T.P.G. College
Lal Ganj Ajhara, PBH

**Abstract :**

The fundamental point of the University library is to help the College in the space of picking up, educating and research. Any academic institution's library is regarded as its most important component. University libraries all over world have their own place of significance in the plan of higher learning. Knowledge is not only stored in libraries; it is also distributed there. There is no question that where libraries of colleges and foundations of higher learning are disregarded or not given due acknowledgment, the country all in all endures in light of the fact that the guidelines of study, educating and explore vigorously rely on the characteristics and quantitative help delivered by the college libraries.

The discoveries of this paper would be valuable in outlining successful approaches, in regard of electronic data assets, in college libraries, which thus would help library clients, to involve libraries offices in a powerful and amicable way. The study could be used to build digital library infrastructure. This study's findings could also be used by Indian libraries to come up with policies and strategies for making better use of electronic information resources and services. This study was carried out with 900 respondents selected from four central universities in Delhi, and the data were analyzed using a Linkert scale and a questionnaire.

**Keywords :** University library, E-sources, digital library, learning, knowledge.

## 1. Introduction

Scientific research needs the library as well as its laboratories while for humanistic research the library is both library and the laboratory in one. Both for humanistic and scientific studies, a first class library is essential in a university. Today‘s users fulfil their information needs by online library resources, and services via networks or authentication methods at any time. In order to exploit the current information explosion, familiarity and use of electronic information resources in the libraries are necessary and important for rapid development. Electronic information resources can be used for efficient retrieval and meeting information needs. This is very important for academic libraries since most of them call for more and more research work. In the digital era the commonly available electronic resources such as CD-ROM databases, online databases, online journals, OPACs and Internet, are replacing the print media.

Electronic information resources have many advantages. First, these are more versatile than paper publications. Second, using full text or key word indexing, these provide excellent searching capabilities. Unlike paper publication, these formats allow simultaneous user access. In addition, information can be accessed from remote locations, such as office and home. This technology enhances the collections of management libraries by providing patrons with access to information that is not available in, or is more accessible through, hard copy. Therefore most libraries have embraced this technology. Electronic resources have bridged information gap in Indian universities with their counterparts in developing countries. With Information Communication Technologies, Indian universities now provide global information resources to their students and academic staff in order to enhance their learning, teaching and research.

The growth, development and sustainability of academic community particularly, the higher education sector of academic world is largely dependent upon the availability and accessibility of information. It is information flow that is needed and is vital for reviving the research agenda of a university and R&D organization. Electronic information resources, which are a newer breed of information resources in comparison to their counterpart print resources, have been contributing a major role to fulfill the information need of the users.

## 2. Review of Literature

**Ramakrishna and others (2018)** examined user opinion about effectiveness of library and information services of K L Deemed to be university. The study observed that majority of library users expressed their opinion about effectiveness of library services as very effective and effective, majority 42 percent of users expressed their opinion on interlibrary loan service respond as ineffective and 34% of library users respond as ineffective. Lastly most of research scholars satisfied on the resources and services of the university library.

**Ramakrishna and others (2017)** discussed use of electronic information resources by pharmacy students. The study found that most of students used electronic information resources for study and research purpose, 20% for career development, 17 % for improving knowledge, The study observed that most of the users use Google as the search engine for using electronic resources, 42% of users use abstracting journals and 33% of users use MEDLINE Database.

**Guruprasad and others (2016)** discussed about utilization of electronic resources by research scholars. The study verified how many of the users using electronic resources, in this study distributed 153 questionnaires and collected 128 filled questionnaires. The study found that majority of the library users access electronic journals, electronic books, and electronic databases. It was exposed that the most of users were aware of electronic resources and more predominantly increases virtual resources to carry their research activities.

**Priyadarshini, Jankiraman and Subramaniam (2015)** conducted a survey to find the Awareness in usage of E-resources among users at Agricultural College and Research Institute, Madurai: A Study. The findings revealed that majority of users were aware of available e-resources and the electronic resources subscribed by the library were used effectively. The study revealed that 80.6% Postgraduate students and 93.3% Faculty members were making use of freely available e-resources through internet using search engines whereas 70% Ph.D. scholars preferred the use of e-journals. The findings of the study also revealed that digital resources available through CeRA, ebooks, springer link, CABI, Wiley and Black, resources subscribed by the library were widely used by the respondents.

## 3. Objectives of the Study

The main aims and objectives of the study are:

1. To examine the current status of electronic information resources in university libraries in Delhi and to identify issues and problems faced by post graduate students, researchers and faculty members, in the use of electronic information resources.
2. To determine the effectiveness of electronic information resources in university libraries located in Delhi. Effectiveness in this context would be assessed through students‘ awareness, usage, users‘ perception, users‘ satisfaction, library‘s performance and perceived needs of electronic information resources.

## 4. Methodology

The study was intended to know the current status and usage of library and information sources and services of selected university libraries (Jawaharlal Nehru University, University of Delhi, Jamia Millia Islamia University & Guru Gobind Singh Indraprastha University) in Delhi. For

present study total 900 respondents were taken and data analysis done through questionnaire process.

## 5. Data Analysis

### Awareness of the Electronic Resources

**Table 1 : Awareness of research scholars with the e-resources**

| University | Awareness of the e-resources | | |
|---|---|---|---|
| | Yes | No | Total |
| IP | 100% (200) | ----- | 100% |
| JMI | 100% (200) | ----- | 100% |
| DU | 100% (300) | ----- | 100% |
| JNU | 100% (200) | ----- | 100% |

Respondents were asked to confirm their awareness of the electronic resources whether they are aware of the electronic resources or not. The responses showed that 100% of research scholars are aware of the electronic resources in JMI, DU, JNU and IP Universities.

**Fig. 1 : Awareness of research scholars with e-sources**

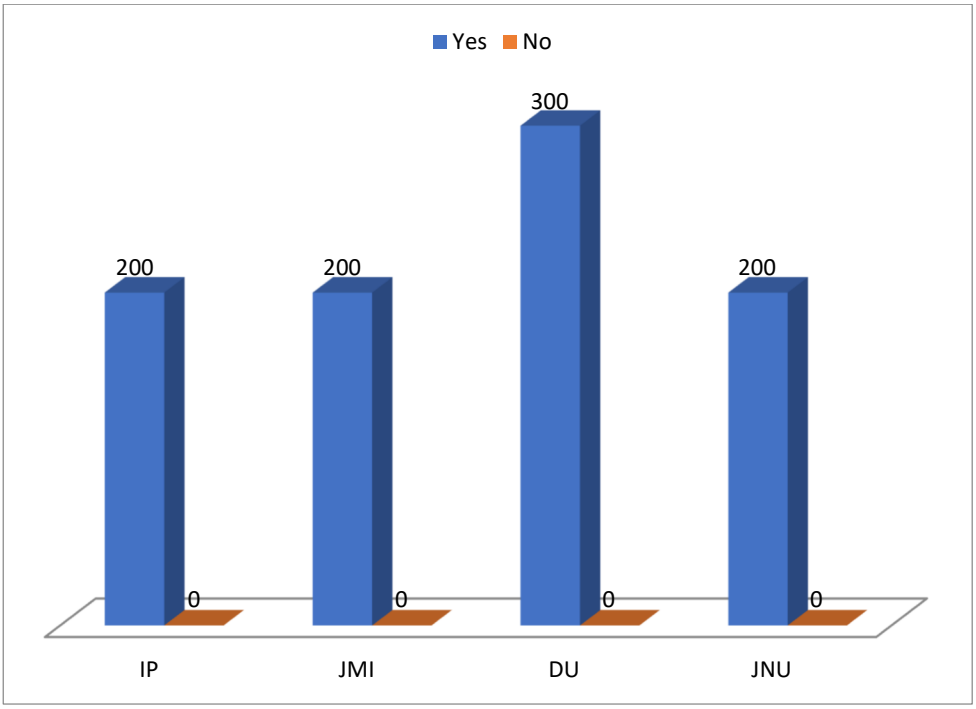


**Table 2 : Awareness of research scholars with the e-resources in central universities in Delhi**

| University | Awareness of the e-resources | | |
|---|---|---|---|
| | Yes | No | Total |
| Central universities in Delhi | 100% (900) | ---- | 100% |

Respondents in central universities in Delhi were asked to explain their awareness of the electronic resources; as to whether they are aware of the electronic resources or not? The responses showed that 100% research scholars were aware of the electronic resources in central universities of Delhi.

**Fig. 2 Research Scholars' awareness of e-resources in Delhi**

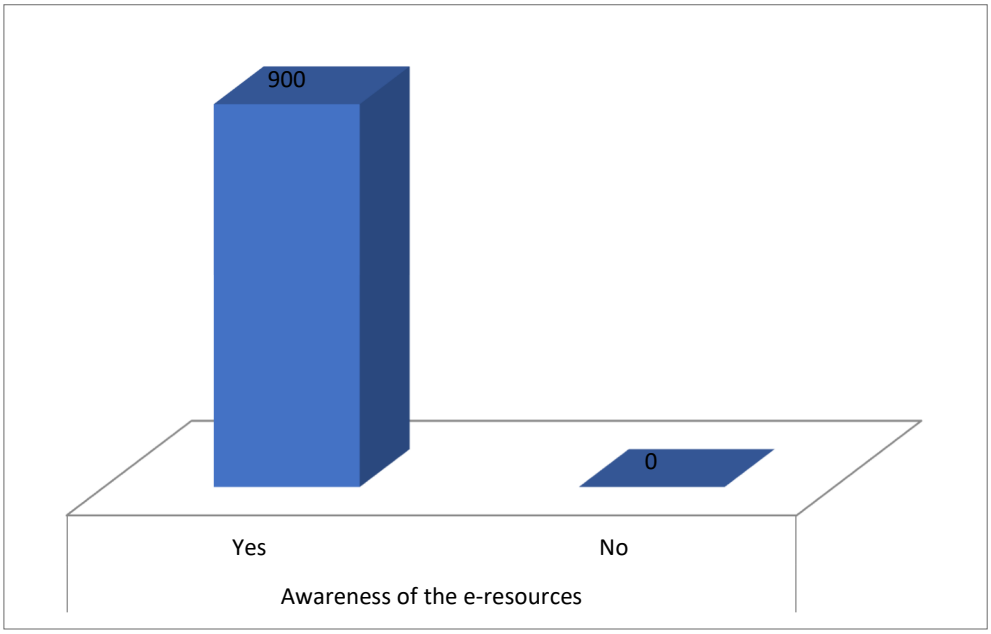


**Libraries – Use and Familiarity**

**Table 3 : Frequency of use of library by the research scholars**

| University | Frequency of use of library | | | |
|---|---|---|---|---|
| | Daily | Weekly | Monthly | Total |
| IP | 59.33% (119) | 16% (32) | 24.67% (49) | 200 |
| JMI | 68% (136) | 15.33%(31) | 16.67% (33) | 200 |
| DU | 57.67% (173) | 36% (108) | 6.33% (19) | 300 |
| JNU | 61.50% (123) | 29% (58) | 9.5% (19) | 200 |

The investigator asked the respondents to give details about their visits to library; how often do they avail the services of the library, daily, weekly or monthly? Research scholars from DU i.e. 36% followed by research scholars of JNU (29%) comprises the largest numbers to utilize and visit library on weekly basis. University of Delhi has lowest number of research scholars among all central universities surveyed who use library on monthly basis.

**Fig. 3 : Frequency of use of library**

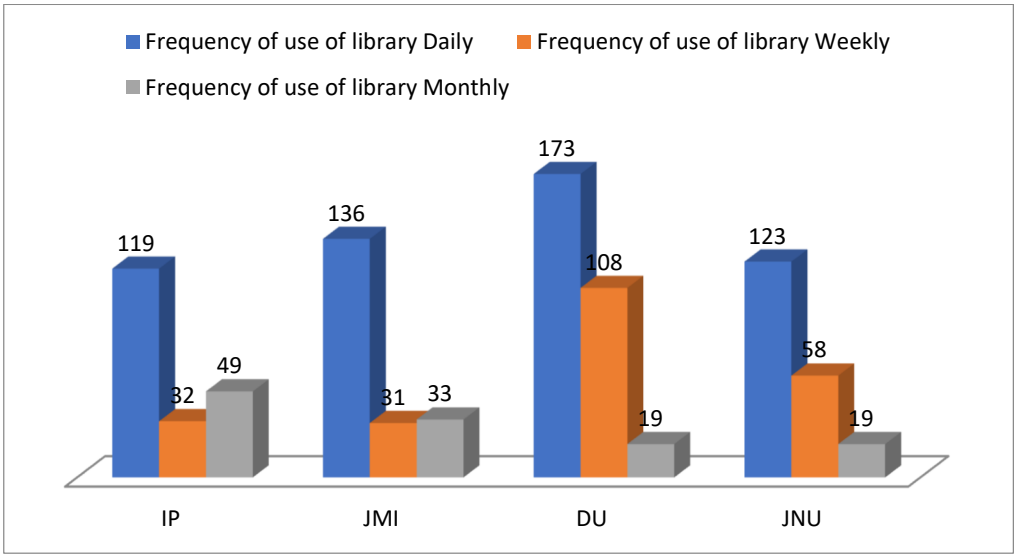


**Table 4 : Frequency of use of library by research scholars in central universities in Delhi**

| Universities | Frequency of use of library | | | |
|---|---|---|---|---|
| | Daily | Weekly | Monthly | Total |
| Central universities in Delhi | 61.23% (551) | 29.08% (262) | 9.69% (87) | 100% (900) |

Respondents were asked to give details about their frequency of library use. Table shows that the central universities in Delhi i.e. 61.23%. 29.08% of users in central universities in Delhi use library weekly.

**Fig. 4 Frequency of use of library by research scholars in Delhi**

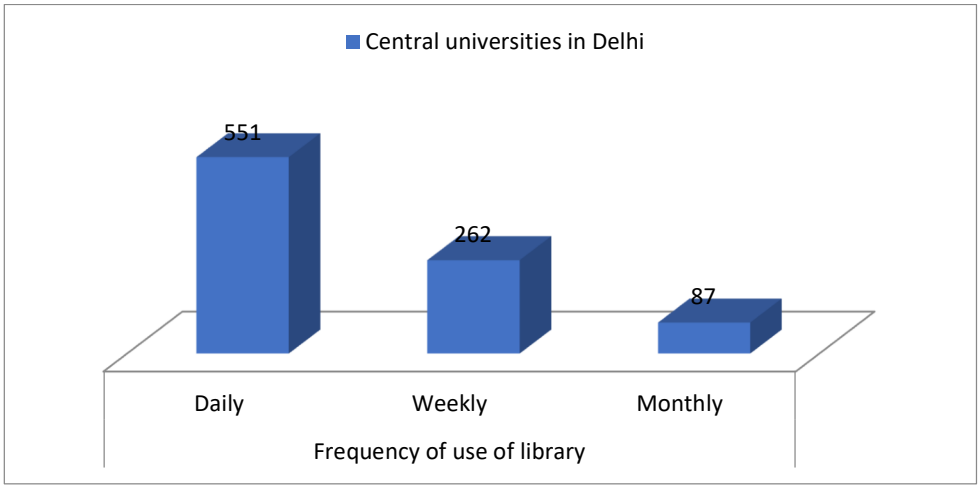

**Table 5 : Present library use of research scholars**

| University | Present library use | | | |
|---|---|---|---|---|
| | Increased | Decreased | About the same | Total |
| IP | 55.33% (111) | 29.33% (59) | 15.34% (30) | 100% (200) |
| JMI | 58% (116) | 25.33% (51) | 16.67% (33) | 100% (200) |
| DU | 56% (168) | 26% (78) | 18% (54) | 100% (300) |
| JNU | 61% (122) | 31% (62) | 08% (16) | 100% (200) |

The researcher asked the respondents if their present library usage increased, decreased or is about the same in last 1-3 years. 61% of JNU respondents said that their present library use had increased. It has been noticed that there is overall increase in the usage of library by the respondents across all the universities surveyed.

**Fig. 5 : Present Library use of research scholars**

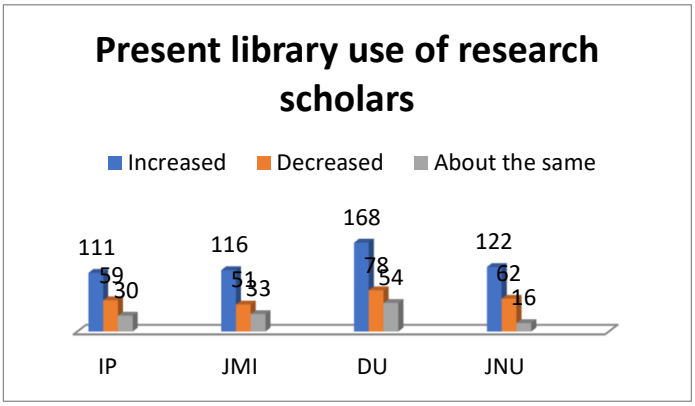


**Table 6 : Present library use of research scholars in central universities in Delhi**

| Universities | Present library use | | | |
|---|---|---|---|---|
| | Increased | Decreased | About the same | Total |
| Central universities inDelhi | 58% (522) | 27.38% (246) | 14.62% (132) | 100% (900) |

Overall, 58% of respondents from central universities in Delhi responded that their library usage had increased. The increased in availing the services of library was found in the central universities in Delhi which can be clearly seen in the graph.

**Fig. 6 : Present library use of research scholars in Delhi**

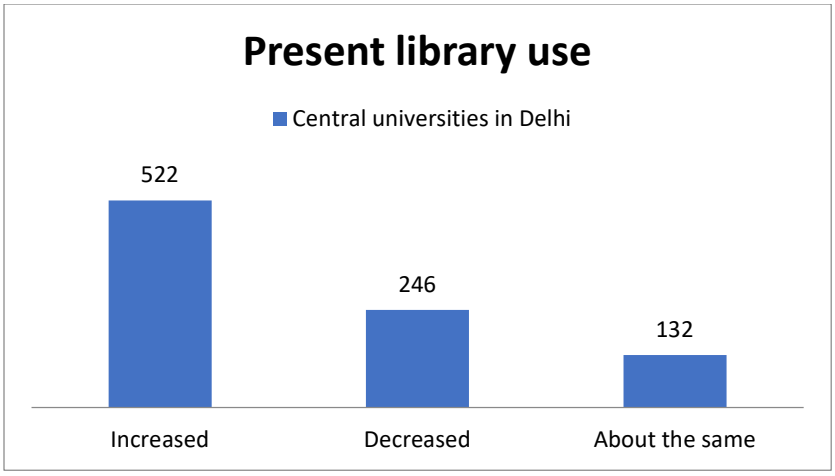


**Table 7 : Familiarity of research scholars with the Search Engines and Print Sources**

| Familiarity | Universities | Familiarity with… | |
|---|---|---|---|
| | | Search Engines | Print Sources |
| | IP | 68.66% (103) | 72.67% (109) |
| | JMI | 72% (108) | 79.33% (119) |
| | DU | 82.67% (248) | 100% (300) |
| | JNU | 84% (168) | 91% (182) |
| Very familiar | | | |
| | | | |
| | IP | 12% (18) | 21.33% (32) |
| | JMI | 13.33% (20) | 17.33% (26) |
| | DU | 10% (30) | ---- |
| | JNU | 10% (20) | 09% (18) |
| Somewhat familiar | | | |
| | | | |
| | IP | 14.67% (22) | 06% (09) |
| | JMI | 13.33% (20) | 03.33% (05) |
| | DU | 05.33% (16) | ---- |
| | JNU | 06% (12) | ---- |
| Not very familiar | | | |
| | | | |
| | IP | 04.67% (07) | ---- |
| | JMI | 01.33% (02) | ---- |

| | | | |
|---|---|---|---|
| | DU | 01.33% (04) | ---- |
| | JNU | ---- | ---- |

**Respondents are extremely familiar with Search Engines and Print Sources.**

In the survey conducted investigator asked the respondents to rate their familiarity with two information sources i.e. search engines and print sources. In JNU 4.67% respondents were not very familiar with the search engines. More than 68% of the respondents, from each university, surveyed were extremely familiar with search engines. Highest familiarity with search engines and print sources has been noted from DU as 88% of respondents are extremely familiar with search engine and 100% with print sources. Lowest percentage of extremely familiar respondents with search engines and print sources is from JMI.

## Conclusion

E-resources need some kind of energy (e.g. electricity) and compatible hardware to be maintained and used. E-resources can only be accessible when required hardware and energy is there. Those with the short sightedness cannot read e-resources and it is difficult for them to identify e-resources. Nevertheless, print resources have their own importance. Despite technological advancements the paramountcy of print resources has not decreased. In the academic world, even today, the most preferred and reliable source is still print sources of information due to its controlled vocabulary and zero possibilities of changes. However, this does not mean that e-resources are all together false or fake. The information which reaches to its seeker is almost protected and the chances of manipulation are less. The hosting sites of e-resources are protected and it is not easy to hack since it is secured by many codes and passwords. Variation in the accessibility, use and awareness over e-resources has been witnessed among the users in different university libraries. Therefore it is required to know, how many users in different universities are actually aware of e-resources. Those who are aware of and use e- resources are found satisfied. In the present study an effort has been made to know the awareness and use of e-resources by the users of central universities in Delhi. The study exposed that e-resources have a great impact on the research scholars in central universities in Delhi. The future of the university libraries depends upon the good collection of e-resources. So, it is necessary for the university libraries that it must update their collections (both print and electronic) on regular basis. It should have expert and experienced library professionals to give better services to the researcher with the changing information world.

## References:

1. Aravind, S. (2017). Use of Electronic Resources in Engineering College Libraries; use study. Journal of Advances in Library and Information Science, 6(1), 85-89.
2. Gohain, A., Saikia, M., & Hazarika, N. (2014). Awareness and use of IT based library and information services among B.Tech students of School of Engineering of Tezpur University: a survey. International Journal of Information Dissemination and Technology, 4(4), 268-274.
3. Gowridevi, R.,Ramakrishna, K., & Sasikala, C (2018). Use of Library and Information Resources and Services by Research Scholars of GITAM Deemed to be University- a study. International Journal of Library and Information Studies, 8(1), 453-459.
4. Guruprasad, G.M., Bangara Chaluvaiah., & Jagadeesh, B.M. (2016). Utilization of e-resources by the science research scholars of Mysore University- a case study. e-Library Science Research Journal, 4(9), 1-6.

5. Khaisar Muneebulla, Khan (2016). Use of Digital Information Resources among the Research Scholars of the University of Mysore: a study. e-Library Science Research Journal, 4(8), 1-8.

6. Nazir Ahmad, Bhat. and Shabir Ahmad, Ganaie. (2016). Use of e-resources by users of Dr Y S Parmar University of Horticulture and Forestry. DESIDOC Journal of Library & Information Technology, 36(1), 17-22.

7. Priyadharshini, R.., Janakiraman. and Subramanian. (2015). Awareness in usage of e-resources among users at Agricultural college and research institute, Madhurai: A case study. European Academic Research, 2(11), 14816-14823.

8. Raja Suresh Kumar, P., Venkateswarlu, Y.CH. & Doraswamy Naick, B.R. (2018). Use of N-List E Resources by Faculty and Students of MRITS and MRCE ngineering College Libraries, Hyderabad, Telangana- A Case Study. Journal of Advances in Library and Information Science, 7(4), 304-308

9. Ramakrishna, K., Doraswamy Naick, B.R., & Sasikala, C. (2017). Use of Electronic Resources by Pharmacy Students of GITAM Institute of Pharmacy, GITAM University, Andhra Pradesh, India. PEARL-A Journal of Library and Information Science, 11(4), 382-389

10. Ramakrishna, K., Doraswamy Naick, B.R., & Sasikala, C. (2017). Use of Electronic Resources by Students of GITAM institute of Pharmacy, GITAM Deemed to be university, Andhra Pradesh India. PEARL-A Journal of Library and Information Science, 11(4), 382-389.

11. Ramakrishna, K., Doraswamy Naick, B.R., & Sasikala, C. (2018). Effectiveness of Library and Information Services of K.L Deemed to be university, Andhra Pradesh, India- A Study: Journal of Advancements in Library Science, 5(1), 89-97.

12. Ramakrishna, K., Sasikala, C., & Gowridevi, R. (2016). Status and Usage of Library Information Resources and Information Services of Rashtriya Sanskrit Vidyapeetha, Tirupati. International Journal of Digital Library Services, 6(2), 74-84.

13. Ramakrishna, K., Sasikala, C., & Gowridevi, R. (2015). Status of online resources in selected Deemed University Libraries in Andhra Pradesh, India. International Journal of Research in Library Science, 1(2), 76-79.

14. Ramakrishna, K., Sasikala, C., & Gowridevi, R. (2016). Availability and Usage of Library and Information Resources and Services at K L University, Vijayawada, Andhra Pradesh, India. Library Philosophy and Practice (e-journal). Paper 1423.

15. Sharat, Kaushik. and Shesh, Narayan. (2016). Impact of Electronic Resources in Present Libraries & Information Resource Centers. International Journal of Engineering & Technology Innovationa, IJETI, 3(2), 1-5.

16. Venkateswarlu, Y.CH., & Raja Suresh Kumar, P. (2018). Use of Electronic Information Resources By the faculty and students of Malla Reddy Group of Institutions, Hyderabad, Tealangana: a study. Journal of Advances in Library and Information Science, 7(4), 269-274.

# पर्यावरणीय दृष्टि से राम

**– डॉ. अम्बिकेश त्रिपाठी**
हिन्दी विभागाध्यक्ष
स.वि.म.वि एवं प्रोद्यौ. स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, लालगंज, प्रतापगढ़, उ.प्र.

भारतीय संस्कृति विश्व की सर्वाधिक श्रेष्ठ एवं प्राचीनतम संस्कृति है। इस संदर्भ में डॉ. बी.एल. अत्रेय कहते हैं कि "इसके उद्‌गम काल को ज्ञात करने में इतिहास की असमर्थता के कारण भारतीय परम्परा इसे अनादि कहती है और उपर्युक्त सातत्य के कारण सनातन भी।"[1] एक राष्ट्र और उसकी संस्कृति की अविभाज्यता अग्नि में उष्णता की तरह ही होती है। भारतीय संस्कृति सर्वव्यापक है, यहाँ की संस्कृति में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' और 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की अभूतपूर्व संकल्पना से 'विश्वकल्याण' की कामना की गयी है। 'मैकाइवर एण्ड पेज' संस्कृति को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि "संस्कृति हमारे दैनिक व्यवहार में, कला में, साहित्य में, मनोरंजन तथा आनन्द में, रहन–सहन और विचार के तरीकों में हमारे प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति है।"[2]

भारतीय संस्कृति में प्रकृति को पूजने का विधान है। यहाँ नदियाँ, पर्वत, वृक्ष, वनस्पतियाँ (दूर्वा), सूर्य, चंद्रमा, गाय, हाथी, नाग एव पृथ्वी आदि को परम अर्चनीय माना गया है। धर्म सम्राट स्वामी करपात्री जी का यह कालजयी उद्‌घोष– 'धर्म की जय हो, अधर्म का नाश हो, प्राणियों में सद्‌भावना हो, विश्व का कल्याण हो।' उपर्युक्त उद्‌घोष की अनुगूँज प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठानों की विश्राम स्थिति में अनिवार्यतः सुनी जा सकती है। यह केवल नारा नहीं है। यह भारतीय संस्कृति का मूलमंत्र है। भारतीय संस्कृति के सबल संचालक हैं श्रीराम। भारतीय संस्कृति को रामजी से विलग करके देखा ही नहीं जा सकता है। श्रीराम भारत एंव भारतीय संस्कृति के पर्याय हैं। भारतीय सनातन संस्कृति का विरोध, भारत का विरोध माना जाना चाहिए। श्रीराम के बिना भारत वर्ष की कल्पना करना बेईमानी है। इस सन्दर्भ में श्री शिवओम अम्बर की पंक्तियाँ अवलोक्य हैं–

**"राम हमारा धर्म हमारा, कर्म हमारी मति है।**
**राम हमारी शक्ति हमारी, भक्ति हमारी गति है।।**
**बिना राम के आदर्शों का चरमोत्कर्ष कहाँ है,**
**बिना राम के इस भारत में भारतवर्ष कहाँ है।।"**

श्री तुलसीपीठाधीश्वर जगद्‌गुरु श्रीराम भद्राचार्य जी कहा करते हैं कि– "राति मंगलम् यः स रामः; अर्थात् श्रीराम ही राष्ट्र के मंगल हैं। भारत में अनेक स्वनामधन्य राजा हुए लेकिन आज तक केवल रामराज की ही परिकल्पना की जाती है। इसका प्रमुख कारण हम सबके राम, शक्ति शील–सौन्दर्य, योग्यता, मनस्विता, तेजस्विता, उदारता, प्रेम बन्धुत्व एवं त्याग प्रियता के दो परमादर्श प्रतीक हैं ही, वे एक श्रेष्ठ एवं जागरूक पर्यावरण संरक्षक भी हैं।

श्रीराम एक तरफ विश्वकल्याण एवं विश्वशांति के लिए निशाचरों (आतंकियों) को मारने की भुजा उठा कर प्रतीज्ञा करते हैं तो दूसरी तरफ समुद्र पर 'सेतु' निर्माण के लिए समुद्र से तीन दिन तक निवेदन करते हैं ताकि अग्नि बाण से समुद्री जीवों को क्षति न पहुँचे। रामजी तो खग–मृग बानर, भालू आदि बहुत प्रिय हैं। हिरणियों को यह विश्वास है कि हम सभी वन्य जीवों को यह नहीं मारेंगे। हिरणियाँ कहती हैं यह कंचन–मृग खोज रहे हैं–

**"हमहिं देखि मृग निकर पराहीं। मृगी कहति तुम्ह का भय नाहीं।**
**तुम आनंद करहु मग जाए। कंचन मृग ये खोजन आये।।"[3]**

इसी प्रकार जब भरत जी चतुरंगिनी सेना सजा कर श्रीराम जी को अयोध्या वापस लाने के लिए चित्रकूट आ रहे थे तो सेना के पदचाप से वातावरण में गोधूलि की स्थिति हो गयी। हाहाकारी स्वर सुनकर पशु–पक्षी सब राम के आश्रम की ओर अपने को सुरक्षित करने के लिए भागे– 'नभ धूरि खग–मृग भूरि भागे, बिकल प्रभु आश्रम गए।'[4]

रामराज की नींव आदर्श पर्यावरण के आधार पर ही टिकी थी। प्रजा शतायु होती थी। सभी के शरीर नीरोग थे। अयोध्या के परितः तथा सरयू नदी के तटपर तुलसी की बाड़ लगायी गयी थी जो समस्त हानिकारक कीटाणुओं को विनष्ट कर देती थी– 'तीर–तीर तुलसिका सुहाई। वृंद–वृंद बहु मुनिन्ह लगाहीं।'[5]

श्रीराम जी ने विभिन्न प्रसंगों में प्रकृति के उपादानों– नदी, समुद्र, पर्वत, वृक्षों एवं वनस्पतियों के प्रति प्रणम्य भाव निवेदित करते हुए दिखते हैं। श्रीरामचरितमानस में बारह नदियों के प्रति प्रसंगतः राम जी ने अपना भावात्मक निवेदन प्रस्तुत किया है। यह नदियाँ– सरयू, तमसा, गोमती, सई, गंगा, यमुना, सरस्वती, मंदाकिनी, पयस्विनी, गोदावरी, नर्मदा एवं सोन आदि हैं। श्रीरामचरिमानस पढ़ने पर विदित होता है कि उस समय का जल बड़ा स्वच्छ होता था। पवित्र स्नान करने वालों की भीड़ तब भी थी और आज भी है। कतिपय उदाहरणों से इस बात की पुष्टि की जा रही है–

- सरजू नाम सुमंगल मला। लोक वेदमत मंजुल मूला।[6]
- प्रथम बासु तमसा भयउ दूसर सुरसरि तीर।
  न्हाइ रहे जलपानु करि, सिय समेत दोउ वीर।।[7]
- पहुँचे जाइ धेनुमति तीरा। हरषि नहाए निरमल नीरा।[8]
- उतरे राम देवसरि देखी। कीन्ह दण्डवत हरष बिसेषी।[9]
- उतरि नहाए जमुन जल, जो सरीर सम स्याम।[10]
- सुरसरि धार नाउँ मंदाकिनि। जो सब पातक पोतक डाकिनी।[11]

आज भी विश्व का सबसे बड़ा धार्मिक मेला कुम्भ के रूप में तीर्थराज प्रयाग में गंगा–यमुना और सरस्वती के तट पर लगता है। श्रीराम जी पर्यावरण संरक्षण के ब्रांड अम्बेसडर हैं। उन्होंने बनवास अवधि में अपनी कुटी पाकड़, जामुन, तमाल, आम और वट वृक्ष के नीचे बनायी थी और बगल में सरिता का कल–कल निनाद था। आश्रम के परितः तुलसी के पौधे आरोपित किये गये थे–

**"नाथ देखअहिं विटप बिसाला।पाकरि जम्बु तमाल रसाला।[12]**
**जिन्ह तरुवरन्ह मध्य बट सोहा। मंजु विसाल देखि मन मोहा।**
**तुलसी तरूवर विविध सुहाए। कहुँ–कहुँ सिय कहुँ लखन लगाये।**

रामराज मे पर्यावरण की स्थिति सुखद थी। वनों में वृक्ष सदा फूलते और फलते थे– 'फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन।' त्रिबिध समीर बहता रहता था और भ्रमर–समूह, पुष्पों का रसपान कर गुंजार करते थे– 'सीतल सुरभि पवन बह मंदा। गुंजत अलि लै चलि मकरन्दा।' लताएँ और वृक्ष माँगने से मधु फल टपका देते थे। गायें मनचाहा दूध देती थीं उर्वरा शक्ति सम्पन्न धरती सदा शस्य श्यामला दिखती थी। शुद्ध अन्नों का उत्पादन अद्भुत था–

**"लता बिटप मांगे मधु चुवहीं। मनभावतो धेनु पय स्रवहीं।**
**ससि सम्पन्न सदा रह धरनी। त्रेता भइ कृत जुग की करनी।।[13]**

'रामराज' की नदियां सदानीरा रहती थीं, उसमें दिव्य जल प्रवाहित होता था और अनेक रोगों को दूर करने में सहायक था– "सरिता सकल बहहिं बर बारी। सीतल अमल स्वाद सुखकारी।।[14] श्रीराम जी की पर्यावरण जागरूकता के अनेक स्वस्थ उदाहरण मिलते हैं। उनके समय में समुद्र कभी भी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता था, यानी सूनामी जैसा संकट कभी नहीं होता था। समुद्र तटों पर रत्नों को छोड़ जाता था–

**'सागर निज मर्यादा रहहीं। डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं।।[15]**

'अयोध्या' के सभी सरोवरों में सरसिज प्रफुल्लित रहते थे। दसों दिशाओं में प्रसन्नता थी। अर्थात् वायु, जल, ध्वनि, रेडियोधर्मी एवं मृदा–प्रदूषण से मुक्त अयोध्या थी, जो विश्व के लिए आज भी अनुकरणीय

है। राम–राज में 'एयर कंडीशन' लगा कर प्रकृति को चुनौती देने का घिनौना काम नहीं किया जाता था। सिंचाई के लिए धरती का कलेजा छलनी कर ट्यूबबेल नहीं लगवाने पड़ते थे। ओजोन की पर्त इतनी मजबूत थी कि हानिकारक पैराबैगनी किरणें धरती पर नहीं आने पाती थीं, परिणामतः कैंसर जैसी बीमारीनहीं होती थी। पर्यावरण इतना संतुलित था कि उपर्युक्त सिद्धियों की जरूरत स्वयं प्रकृति कर देती थी–

**"विधु महि पूर मयूखन्हि रवि तप जेतनहिं काज।**
**माँगे वारिद देहि जल, रामचंद्र के राज।।**[16]

वर्तमान समय में भारत विश्व का आठवाँ सबसे प्रदूषित देश है। राजधानी दिल्ली दुनिया का तीसरा सबसे ज्यादा प्रदूषित शहर है। लोगों को अभी भी समझ में नहीं आ रहा है कि देश की राजधानी में कई बार 'वायु प्रदूषण के चलते विद्यालय बंद करने पड़े, क्रिकेट मैच बाधित हुए, गाड़ियों को सम और विषम नम्बर के हिसाब से चलने की अनुमति दी गयी। आज स्थिति भयावह है। भारत सरकार यद्यपि इसके लिए सराहनीय पहल कर रही है, देश की मुद्राओं तक पर 'स्वच्छ भारत' छापना पड़ रहा है। घर–घर शौलाचय की पहल प्रशंसनीय है। आज भारत को स्वच्छ बनाने के लिए जन–जन को जागरूक होना पड़ेगा। 'नमामि गंगे परियोजना' बिना जन भागीदारी के सफल नहीं हो सकती। एक पाव मूंगफली लेकर हम भारतीय पूरी 'बस' को पशुशाला बना देते हैं। श्रीराम जी ने पर्यावरण को परिशुद्ध करने के लिए करोड़ों अश्वमेध यज्ञ किये थे–

**"कोटिन्ह बाजिमेघ प्रभु कीन्हीं। दान अनेक द्विजन्ह कहँ दीन्हीं।"**[17]

आज लोग पानी की बोतल खरीद रहे हैं। मास्क लगा कर चलना भी शुरू कर दिया है। कोरेाना का कहर चेतावनी दे चुका है। अगर हम सब न संभले तो ऑक्सीजन का थैला लेकर चलना पड़ेगा। धरती और समुद्र में बढ़ता बेतहासा कचरा चिन्ताजनक है। पूरी दुनियाआज 'परमाणु बम' की सेज पर सो रही है। आज विश्व में सुख–शान्ति भारतीय संस्कृति के अनुकरण से ही आ सकती है और 'राम' इसके पर्याय हैं। श्रीराम का वैश्विक सद्भाव का चिन्तन अद्वितीय है–

**'बैर न आग्रह, आस न त्रासा। सुखमय ताहि सदा सब आसा।**[18]

अर्थात् न किसी से बैर करें, न लड़ाई–झगड़ा करें न आशा रखें न भय ही करें। उसके लिए सभी दिशाऐं सदा सुखदायी हों। ध्यातव्य है भारत के यशस्वी प्रधानमंत्री ने 'रूस–यूक्रेन' युद्ध के सन्दर्भ में यूसी राष्ट्रपति 'ब्लादीमीर पुतिन' से जो एक बात अत्यन्त समीचीन एवं प्रासंगिक कही थी, वह श्रीरामचरितमानस से प्रेरित नजर आती है कि– 'आज का समय युद्ध का नहीं बुद्ध का है।' इस प्रकार पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से भारतीय संस्कृति और श्रीराम जी की दृष्टि विश्व के एिल परम अनुकरणीय एवं प्रासंगिक है।

**सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया।**
**सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग भवतेत्।**

## संदर्भ–सूची –


1. Dr.BL Atreya. The Spirit of Indian Culture, Ed. 1952 Page-7
2. मैकाइवर एण्ड पेज : सोसाइटी इट्स एण्ड चेंज, पृ. 226
3. श्रीरामचरितमानस, अरण्य काण्ड, दो. 36/4–5
4. वही, अयोध्याकाण्ड, दो. 2/5, छंद 2
5. वही, उत्तरकाण्ड, दो. 20/5
6. वही, बालकाण्ड, दो. 38/12–13
7. वही, अयोध्याकाण्ड, दो. 2/150
8. वही, बालकाण्ड, दो. 42/5
9. वही, अयोध्याकाण्ड, दो. 86/2–7
10. वही, अयोध्याकाण्ड, दो. 109/1
11. वही, अयोध्याकाण्ड, दो. 131/5–6
12. वही, अयोध्याकाण्ड, दो. 236/2–7
13. वही, उत्तरकाण्ड, दो. 22/1–6
14. वही, अयोध्याकाण्ड, दो. 2/5
15. वही, उत्तरकाण्ड, दो. 22/9
16. वही, उत्तरकाण्ड, दो. 23
17. वही, उत्तरकाण्ड, दो. 23/1
18. वही, उत्तरकाण्ड, दो. 45/5

# EXISTENTIAL THEMES IN ABBAS KIAROSTAMI 1997 FILM TASTE OF CHERRY

- **SATYEN PANERI**
Aadinath Nagar Banswara,
Banswara

Abbas Kiarostami was an acclaimed Iranian filmmaker, renowned for hisunique and contemplative approach to cinema. Born on June 22, 1940, in Tehran, Iran, Kiarostami's work often explored themes of childhood, reality,and the essence of human experience. His early career began with filmmaking in the 1970s, but he gained international recognition in the 1990s with films like "Close-Up" (1990) and "Through the Olive Trees" (1994). Kiarostami's style was marked by a blend of documentary and fictional elements, often using non-professional actors and natural settings to create a sense of authenticity and intimacy. One of his most famous works is the "Koker Trilogy," consisting of "Where Is the Friend's Home?" (1987), "Life, and Nothing But..." (1992), and "Through the Olive Trees" (1994). These films are set in and around the village of Koker in northern Iran, exploring interconnected narratives and philosophical reflections on life and art.

Kiarostami's films are characterized by their minimalist storytelling, poetic imagery, and profound humanism. He was also known for his use of long takes,symbolism, and a keen interest in the complexities of interpersonal relationships. His approach to filmmaking influenced a generation of directors worldwide and earned him numerous awards, including the Palme d'Or at the Cannes Film Festival for "Taste of Cherry" (1997).

Outside of his films, Kiarostami was a poet, photographer, and visual artist, often blurring the lines between different artistic disciplines. His work continues to be studied and celebrated for its depth, innovation, and sensitivity to the human condition.

Abbas Kiarostami passed away on July 4, 2016, but his legacy as a master of world cinema endures through his timeless and thought-provoking films. Abbas Kiarostami’s "Taste of Cherry" (1997) stands as a profound exploration of existential themes within the context of contemporary Iran. The film, which won the Palme d'Or at the Cannes Film Festival, delves deep into questions of life, death, and human connection through its minimalist narrative and

contemplative style.

**Isolation and Alienation**

At the heart of "Taste of Cherry" lies the character of Mr. Badii, portrayed by Homayoun Ershadi, a middle-aged man driving through the outskirts of Tehran in search of someone willing to assist him with a solemn task: burying his body after he commits suicide. This premise immediately sets the tone for an exploration of existential isolation and alienation. Badii’s solitary journey through the sparse, dusty landscapes outside the bustling city mirrors his internal isolation—a stark portrayal of an individual grappling with the meaning of existence.

**The Search for Meaning**

Throughout the film, Kiarostami invites viewers to contemplate the fundamental questions of life’s purpose and meaning. Badii’s encounters with various passengers—a Kurdish soldier, a seminarian, and a taxidermist—serve as catalysts for philosophical dialogue about life, death, and the human condition. Each conversation reveals different perspectives on existence,

challenging Badii's resolve and prompting him (and the audience) to reconsider the significance of his decision.

**Ethical Dilemmas**

Kiarostami deftly navigates ethical dilemmas inherent in Badii's quest. The film never simplifies the issue of suicide; instead, it presents a nuanced exploration of the moral complexities involved. Through the discussions between Badii and his passengers, viewers confront the ethical implications of his desire to end his life and the responsibility of those who may assist him.

**Nature and Existence**

The film's cinematography plays a crucial role in conveying its existential themes. Kiarostami's use of long takes and wide shots, capturing the vast Iranian landscapes bathed in natural light, enhances the film's contemplative atmosphere. The barren, sun-baked terrain becomes a visual metaphor for the harsh realities of life and death, emphasizing the insignificance of individual existence against the backdrop of nature's grandeur. Abbas Kiarostami's "Taste of Cherry" is a haunting meditation on existentialism that continues to resonate with audiences worldwide. Through its minimalist narrative, sparse dialogue, and profound imagery, the film invites viewers to reflect on the complexities of human existence, the search for meaning in life, and the ethical dilemmas that shape our decisions. It remains a testament to Kiarostami's mastery as a filmmaker and his ability to provoke introspection through the power of cinema.

**REFRERANCE**

https://en.wikipedia.org/wiki/Abbas_Kiarostami
https://en.wikipedia.org/wiki/Taste_of_Cherry
De Beauvoir, Simon. What is existentialism?. Penguin books, 2020
https://mubi.com/en/in/films/taste-of-cherry (link to watch film)

# A STUDY OF GENDER EQUALITY AND HUMAN RIGHTS IN INDIA

**Prof. Deepti Jha**

Guest faculty Jan-bhagidari
Government law college Indore
Madhya Pradesh

Gender equality is imperative to human rights and peaceful societies and has been proven by myriad research to be important for all communities to thrive. United Way of the National Capital Area believes in equity for all, regardless of race, gender, income and ability. Below, we explain what gender equality is, examples of gender equality in action and how it benefits all people. Gender equality definition is the state in which access to rights or opportunities is unaffected by gender. It's not only women who are affected by gender inequality—all genders are impacted, including men, trans and gender-diverse people. This in turn impacts children and families, and people of all ages and backgrounds. Equality in gender does not mean that women and men will have or need the exact same resources, but that women's, men's, trans people's and gender-diverse people's rights, responsibilities and opportunities will not depend on their assigned gender at birth.

**Abstract :**

On average, women around the world do three times as much unpaid work at home as men, including household work and caring for children and family members, and many of these women also work full-time or part-time careers. Gender equality in this example would look like splitting up at-home work as evenly as possible between all genders of a household, so that the burden of taking care of the home and family is not solely on women.

The pay gap between men and women remains strong throughout the United States and around the world, especially for women who are mothers or caretakers. Gender equality in the workforce means being paid the same salary for equal work, regardless of gender. It also means that if a woman takes time off from work to take maternity leave, for example, she will not be punished when she returns to work. She will still be considered for the same promotions, pay raises and career opportunities that she would have been given had she not taken the necessary time off to care for her family.

Whether in the workplace, within a religious group, at a community center or any other group setting, people of all genders deserve to feel safe and be free of bullying and microaggressions, sexual harassment and prejudice based on gender. A society that appreciates and upholds gender equality does not allow for offensive comments, harassment, etc., to be tolerated in any form.

When all genders receive equal job opportunities, society benefits. Studies show a diverse workplace is a more productive workplace, and this diversity includes gender diversity. This success in the workplace translates into the economy, as well. When equal job opportunity is given to all genders, poverty rates are reduced, communities are uplifted and a nation's GDP is significantly improved.

Gender equality in education benefits every child within the school system. Girls who receive an education have a higher likelihood to be healthier and more productive, earning higher incomes and building better futures for their families. This in turn contributes to a stronger economy that benefits all genders and leads to better health within a community. According to UNICEF, when a girl receives a secondary education, her lifetime earnings

dramatically increase, the national growth rate rises, child marriage rates decline, child mortality rates decline, maternal mortality rates fall and child stunting drops.

Studies show gender inequality has a negative impact on many health outcomes, including in regard to family planning, maternal and child health, nutrition, pandemic disease and more. When health systems are transformed to provide equal access to health care for all genders, studies show there are better health outcomes, including reduced depression and PTSD, reduced mortality rates, better self-rated health and reduced alcohol consumption.

***Key words :*** *Women Human Rights, Judicial Approaches, Gender Protection, Civil Procedure Code, Freedom of Religion.*

**Introduction :**

Women constitute about one-half of the global population, but they are placed at various disadvantageous positions, due to gender difference and bias. They have been the victims of violence and exploitation by the male dominated society all over the world. Ours is a tradition bound society where women have been socially, economically, physically, psychologically and sexually exploited from times immemorial, sometimes in the name of religion, or on the pretext of writings with scriptures and sometimes by the social sanctions. The concept of equality between male and female was almost unknown to us before the enactment of the Constitution of India. Of course, the Preamble of the Constitution, which is the supreme law of the land, seeks, to secure its citizens including women folk, justice-social, economic and political, liberty of thought, expression, belief, faith and worship, equality of status and opportunity and promote fraternity assuring the dignity of the individual.

For centuries past, women all over the world have not only been denied full justice-social, economic and political but as “a weaker sex” they have been used, abused, exploited and then discarded to lead immoral, street vagrant and destitute life till their death. The general, though unfortunate impression has ever since been that women are sub-human species, an object of contempt and ridicule a commodity for barter, an expendable asset and a plaything for mere sexual enjoyment..

Human rights are derived from the dignity and worth inherent in the human person. Human rights and fundamental freedoms have been reiterated into Universal Declaration of Human Rights. Democracy, development and respect for human rights and fundamental freedoms are inter – dependent and have mutual reinforcement. The human rights for women are, therefore, inalienable, integral and indivisible part of the universal human rights. The full development of personality, fundamental freedoms and equal participation by women in political, social, economic and cultural life are concomitants for national development, social, family stability and growth. All forms of discrimination on grounds of gender is violative of fundamental freedoms and human rights.13 These human rights have been made enforceable as constitutional or fundamental rights in India.

Right to Equality as envisaged under Articles 14, 15 and 16 of the Constitution means the equality of opportunity, equality before law, equal protection of laws, no discrimination against any person on grounds of sex, religion, race, caste and place of birth and no discrimination in the matters of public employment on the grounds of sex only as provided under Article 16 of the Constitution. The Constitution guarantees the right to equality before law and equal protection of law. The Supreme Court has held that differential treatment could be given to people or objects if such differential treatment was based on reasonable classification.

Two requisites of reasonable classification are:

1. Those who are selected for different treatment must be distinct from those who are excluded from it and

2. The criteria of classification must have nexus with the object of such classification.

Gender Inequality is a worldwide issue. As part of the Gender Equality Series featuring the fifth sustainable goal of the United Nations, this blog emphasises upon the rights women are given in India to bridge the gaps between gender. The blog firstly, describes the laws in Indian Jurisdiction for advancement of women and secondly, highlights the key decisions of the Courts empowering women. With the various legal precedents, the Indian Judiciary has put forth the need to change and empower women. There are particular legal frameworks for women under Article 53 in the Constitution of India, and social equity is one of the fundamentals of the Constitution of India.

Legal Framework : In 2013 parliament has passed the Sexual Harassment of Women at Workplace (Prevention, Prohibition and Redressal) Act, 2013. This law is a key development that empowers women in the battle against gender-based mistreatment. Dowry is a social menace in India that has deep roots in the country. It is defined in Section 2 of the Dowry Prohibition Act, 1961 and additionally explained by the Supreme Court in Ashok Kumar v. State of Haryana [AIR 2010 SC 2839] as any property or profitable security that is given or consented to be given either expressly or in a roundabout way by one party (bride's) to another amid or after marriage. In Satbir Singh v. State of Punjab [AIR 2001 SC 2828], the Supreme Court held that if property is given or consented to be given regarding the marriage it is considered dowry. Section 3 of the Dowry Prohibition Act 1961 guarantees punishment for issuing or taking dowry. The Hindu Succession (Amendment) Act 2005 has acquired a radical change in the present Act. Whether married or unmarried, women have been given the right of progression in the joint Hindu family property; if the Mitakshara Law represents the joint Hindu family. Stri implies ladies, and stridhan indicates the property of ladies. The Hindu sages characterise the stridhan as the property of women. As per section 14 of The Hindu Succession Act, 1956 property of a women is her supreme property. Section 29 A provides a measure appropriate to little girls in coparcenary property.

Indian Penal Code, 1860 contains different sections to shield women from infringement of their rights; for example, Section 354 states that strike or criminal power to women intending to shock her humility will be rebuffed. Section 354A discusses inappropriate behaviour when a man confers unwelcome physical contact and propels a request or demand for sexual support demonstrating erotica. Section 354C explains voyeurism which implies if any man watches or takes a picture of a woman in any conditions where she expects privacy. Section 354D discusses stalking. Women are often spoken about profanely in the media. Provisions identifying with profanity have been incorporated into sections 292 to 294 of the Indian Penal Code, 1860. In the historic point judgment, Ranjit D. Udeshi v State of Maharashtra [AIR 1965 SC 881], the Supreme Court acknowledged the test set down in English case R. v Hicklin [(1868) 3 Q.B. 360] to pass judgment on the indecency of an issue.

Judicial Precedents : The Judiciary has opined about the Right to Live with Dignity to Women. In Surjit Singh v. Kanwaljit Kaur [AIR 2003 P&H 353], the High Court held that restorative examination of a woman for her virginity would unquestionably violate her entitlement to protection. The virginity test is an infringement of the dignity of women. Live-in Relationship is another such example where Judiciary has portrayed its progression. In January 2008, the Apex court approved a long live-in relationship as a marriage, and children conceived from such a relationship will be legitimate. In Mohabbat Ali v. Muhammad Ibrahim Khan [AIR 1929 135 P.C.], the Court said that law presumes marriage against concubines when a man and woman have cohabitated constantly for many years. However, there is a prerequisite

of confirming long-living together for several years. Yet, the quantum of years has not been indicated by law.

**Conclusion :**

The last century experienced great amount of destruction and civil strives. Advancement of science has not only made human life more comfortable but also created mechanisms for its destruction and exploitation as were never done in earlier centuries. The destruction and large scale genocides forced the wise to create institutions for the betterment and safety of humans. Fortunately, it is also recognised that the prerequisite criteria of any civil society to exist and develop is the empowerment of its formerly exploited and weaker section. Women were not only deprived at social, political and economic front but they were also prone to more exploitation during wars and civil strives because they are viewed more as an "authentic identity" of any community. At international level the Allied nations got together to create a new world system in which more co-operation among different nation was sought.

India also responded to these recommendations and introduced reforms and amendments in Marriage and Civil laws. These legislations aimed at protecting women against social discrimination, violence and atrocities and also to prevent social evils like child marriage, dowry, rape, practice of Sati, etc. Hindu Marriage Act, 1955 was amended putting an end to the practice of polygamy and thus giving legitimacy to the relation of the first wife and thereby, protecting her allied rights. Under the Hindu Marriage Act, girl is given the right to repudiate a child marriage before attaining maturity whether the marriage has been consummated or not. Property and inheritance laws were also amended and now much wider rights are given to women and widows. Still, a lot was to be done in response to criminal offences against women. In cases of Sexual harassment, rape and other forms of physical assault, women were looked upon as culprits and their character became one of the strongest defences for the culprit to escape rigours of law.

Indian Government introduced number of development programmes for empowering rural women and ensuring their economic independence. The Integrated Rural Development Programme (IRDP) and the Jawahar Rojgar Yojana (JRY) were introduced and a stipulated quota was ensured for women beneficiaries. Taking leaf from the numerous rights being recognized by CEDWA, the Government also introduced micro-credit programmes for selfemployment which are funded heavily by International Agencies. Schemes such as the Development of Women and Children for Rural Areas (DWCRA) and the Development of Women and Children in Urban Areas (DWCUA) are meant to create employment. To asses and safeguard the women rights in light of international guidelines, the Indian Government made commitment to review 'protective' legislations that govern women's employment. Legislations such as the Minimum Wages Act,1956 guaranteed minimum wages to the workers, Equal Remuneration Act, 1976 incorporated the principle of 'equal pay for equal work' and the Maternity Benefit Act,1961 were introduced in order to provide social security and to give effect to ILO convention on maternity benefit.

Absence of women in political sphere and other forms of decision making process has hampered their prospects and progress. CEDAW declaration directs the States to promote equality among their citizens in political spheres like voting rights and election process. Indian Constitution bestows equality in political rights to all irrespective of gender, caste and creed yet; the number of women representative in politics is dismissal. In Lok Sabha and Rajya Sabha elections women numbers are less than 6%. Taking guidance from international convention India set on framing laws to ensure women participation at political level. 73rd and 74th Amendments to the Constitution ensures reservation of women in Panchayats and municipal bodies (local governments). Panchayati Raj Acts have been passed by several State

governments giving effect to the constitutional provisions. UPA government is also lobbying hard to introduce Women Bill in Parliament in the monsoon session of 2010 providing 33% representation to women in Parliament.

**References:**


- Justice Manju Goel, 'Gender Equality-Application of International Covenants in Domestic Spheres', (2004) 7 SCC (J) ,p. 23.
- S.P. Sathe (1999),'Gender, Constitution and the Courts', in Engendering Law : Essays in Honour of Lotika Sarkar, p. 137.
- N.R. Madhava Menon(1986), National Convention on Uniform Civil Code for all Indians, p. 7.
- O.C. Sharma (1994), ed., Crimes Against Women- A Saga of Victimology Sans Penology, p. 33.
- Mohini Chatterjee (2005), Women's Human Rights, pp. 172-173.
- Murlidhar C. Bhandare (1999), The World of Gender Justice , pp. 58-59.
- Rahul Rai (2000), Human Rights and UN Initiatives, pp. 254-57.

# विभिन्न कालों में महिलाओं की स्थिति का बदलता प्रतिरूप – एक परिचय

**डॉ. सीमा मीणा**
असिस्टेंट प्रोफेसर,
इतिहास विभाग,
सम्राट पृथ्वीराज चौहान गवर्नमेंट कॉलेज, अजमेर

महिला विमर्श, ऐसा विषय है जो पिछले कई दशकों से भारत सहित पूरे विश्व का ज्वलंत प्रश्न रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ जैसे अंतर्राष्ट्रीय संगठन ने अपनी रिपोर्ट में इस विषय को प्राथमिकता दी है और महिलाओं को समानता दिलाने के लिए हर दिशा में उनके द्वारा सम्भव प्रयास किए जा रहे हैं। शिक्षा, रोजगार, सम्पत्ति, विवाह और राजनीति आदि क्षेत्रों में महिलाओं द्वारा समान अधिकार की मांग प्रबल हो चुकी है। सदियों से परतन्त्रता में बंधी तथा शोषण का शिकार हुई महिलाओं को एक लंबे संघर्ष ने सम्पत्ति के अधिकार, वोट देने के अधिकार, विभिन्न कानूनी अधिकारों में समानता के अधिकार दिए जिसने महिलाओं की स्थिति को अपेक्षाकृत दृढ़ किया। परन्तु आज भी महिला समाज में दो वर्ग विद्यमान हैं, एक शक्ति सम्पन्न और दूसरा शक्तिहीन। इस शक्तिहीन महिला वर्ग के लिए शक्ति की नवीन व्यवस्था की दिशा में सशक्तरूप से कार्य करना ही महिला विमर्श है।

महिला–विमर्श का एक उद्देश्य यह भी है कि वे अपने अधिकारों व अस्तित्व को समझने लगें और अपनी आमदनी श्रमशक्ति और सामुदायिक संसाधनों पर नियन्त्रण बनाए रख सकें तथा घर और समाज के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को लोगों के सम्मुख प्रस्तुत कर सकें। साथ ही सामाजिक राजनीतिक व सार्वजनिक जीवन में उनके साथ किए जा रहे उत्पीड़न व दुर्व्यवहार को समाप्त किया जा सके।

महिलाओं की स्थिति किसी भी देश की संस्कृति एवं सभ्यता की श्रेष्ठता का मानदण्ड मानी जाती है। प्रायः देखा गया है कि अनेक देशों में महिलाओं की स्थिति प्रारम्भ में अत्यन्त दयनीय थी किन्तु कालांतर में उसमें शनैः शनैः उत्थान व सुधार हुआ किन्तु भारत में प्राचीन काल में महिलाओं की स्थिति समाज में सम्मानजनक व आदरणीय थी किन्तु समय के साथ साथ उसमें गिरावट आने लगी। यह पतन किसी एक क्षेत्र विशेष में दृष्टिगोचर नहीं हुआ अपितु सभी क्षेत्रों में स्पष्ट दिखाई देने लगा। स्त्रियों ने एक कल्याणकारी समाज के निर्माण में अपना पूर्ण योगदान प्रदान किया तथा भारतीय सामाजिक व नैतिक परम्पराओं को अपने श्रम और ज्ञान से सिंचित किया फिर भी इतिहास के प्रत्येक काल में उसकी सामाजिक स्थिति में गिरावट होती रही। महिलाओं के शोषण व उत्पीड़न, शिक्षा के पतन ने उन्हें न केवल अज्ञान के अंधकार में धकेल दिया अपितु उनकी गरिमा में भी पतन के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे। पर्दा प्रथा ने उनकी योग्यता को निखरने नहीं दिया और सम्पत्ति पर अधिकार से वंचित होने के कारण वह सम्मान अर्जित नहीं कर पाई थीं।

19वीं शताब्दी में पुनर्जागरण के फलस्वरूप जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में रूढ़िवादी परम्पराओं का खण्डन किया गया, लोग नवीन प्रगतिशील मार्ग की ओर उन्मुख हुए। समाज की पुरानी जर्जर मान्यताओं को नकारा जाने लगा। इस क्रांतिकारी परिवर्तन ने भारतीयों में शिक्षा, सामाजिक व धार्मिक मान्यताओं के पुनर्मूल्यांकन के विचार को दृढ़ कर दिया। महिलाएं भी इस प्रभाव से अछूती नहीं रहीं और आधुनिक युग तक आते–आते अपनी शक्ति, साहस और बुद्धि कौशल से उन्होंने अपने खोए हुए महत्व को प्राप्त कर लिया क्योंकि अब उनमें चेतना का संचार हो चुका था और वह अपने अधिकारों और कर्तव्यों से अवगत हो चुकी थीं।

इतिहास की कोई भी घटना आकस्मिक नहीं होती। महिलाओं की स्थिति में होने वाला सुधार भी इसका अपवाद नहीं था। भारत में विभिन्न कालों में स्त्रियों की स्थिति अलग–अलग रंगों में रंगी हुई दृष्टिगोचर होती है। प्राचीनकाल में महिलाओं को धार्मिक क्षेत्र में सदैव से विशेष महत्व प्राप्त रहा। वे हमेशा धार्मिक

अधिकारों से लाभान्वित रहीं। धार्मिक अनुष्ठानों में पति के साथ समान रूप से सम्मिलित होती थीं। वैदिक साहित्य इनकी धर्म में भूमिका को निर्धारित करने का आधार एवं प्रमुख साक्ष्य है।

वैदिक साहित्य में विवाहोपरांत पुत्र प्राप्ति की कामना किए जाने का उल्लेख मिलता है परन्तु वृहदारण्यक उपनिषद् में योग्य व विदुषी पुत्री की प्राप्ति की कामना का भी उल्लेख उपलब्ध है जो स्पष्ट करता है कि पुत्र की तुलना में कदाचित् पुत्री का महत्व कम नहीं था। बालकों के समान बालिकाओं के 'नामकरण संस्कार' का उल्लेख, कन्याओं के वैदिक मन्त्रों के उच्चारण व अध्ययन का उल्लेख धर्मशास्त्रों में मिलता है। कन्याओं के 'उपनयन संस्कार' का वर्णन भी वैदिक ग्रन्थों में प्राप्त होता है। 'शतपथ ब्राह्मण' में महिला और पुरुष दोनों के ब्रहमचर्य पालन का उल्लेख मिलता है। महिलाएं यज्ञों को सम्पन्न करने के साथ साथ वैदिक शिक्षा में भी पूर्ण पारंगत होती थीं। लोपामुद्रा, गार्गी और मैत्रेयी विलक्षण नारियां थीं जिनमें धार्मिक वाद विवाद करने, मीमांसा जैसे कठिन विषयों के ज्ञान की अद्भुत क्षमता विद्यमान थी। कहीं कहीं उन्हें पुत्रों जैसे अधिकार प्राप्त थे। मार्कण्डेय पुराण में महिलाओं द्वारा श्राद्ध सम्पन्न किए जाने का भी वर्णन मिलता है। शिक्षित होने के साथ साथ महिलाओं के युद्ध कला में भी निपुण होने के प्रमाण भी हैं इस संबंध में 'पिप्पला' का नाम विशेष रूप से वर्णनीय है। डा. आर. सी. दत्त ने भी महिलाओं के संदर्भ में उल्लेख किया है कि "प्राचीन इतिहास के निष्पक्ष विद्यार्थी यह स्वीकार करेंगे कि प्राचीन काल में हिन्दुओं में स्त्री का स्थान प्राचीन यूनानियों और रोमनों की तुलना में श्रेष्ठ था।"

समय के साथ साथ परिस्थितियों में परिवर्तन के कारण महिलाओं की स्थिति व अधिकारों में गिरावट आने लगी। मनु जैसे व्यवस्थाकारों ने स्त्रियों को शूद्र की श्रेणी में रखकर उसके धार्मिक अधिकारों पर कुठाराघात किया। उन्होंने पुत्र को ही पैतृक सम्पत्ति का अधिकारी माना और स्त्रियों को पुरुष के अधीन बना दिया। जन्म से मृत्यु तक उसे किसी न किसी पुरुष के संरक्षण में रहना पड़ता था–

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ।।

अर्थात् स्त्री जब कन्या होती है तब पिता उसकी रक्षा करे, युवावस्था में पति उसकी रक्षा करे, वृद्धावस्था में पुत्र उसकी रक्षा करे। स्त्री स्वतन्त्र रहने योग्य नहीं है।

'आपदि मातैव शरणम्।' अर्थात् आपत्ति में माता ही शरण है जैसी आदर्श स्थिति उत्तर वैदिक काल तक आते आते स्त्रियों को पराधीनता की श्रंखलाओं में जकड़ने लगी। शतपथ ब्राह्मण में स्त्रियों को दान की वस्तु मान लिए जाने का वर्णन है अर्थात् बाल विवाह, सती प्रथा, विधवाओं की दयनीय स्थिति, वैश्यावृत्ति व पर्दा प्रथा जैसी कुरीतियों ने महिलाओं को मानव की श्रेणी से नीचे गिरा दिया। ऐतरेय ब्राह्मण कहता है "पुत्री दुख का कारण है।" "एक अच्छी स्त्री वह है जो उत्तर नहीं देती।" मैत्रेयी संहिता में तो जुआ व मदिरा के बाद स्त्री को पुरुष का तीसरा प्रमुख दोष बताया गया है। अब स्त्री का अर्धनारीश्वर स्वरूप मात्र पूजा अर्चना तक सीमित हो गया। वे देवियों के रूप में तो पूजी जाती थीं परन्तु समाज में उनकी वास्तविक स्थिति इसके विपरीत थी।

मध्यकाल में तो महिलाओं की स्थिति उत्तरोत्तर और दयनीय व शोचनीय होती गई। वह गृहस्वामिनी तो थी और धार्मिक कार्यों में भी उसकी उपस्थिति अनिवार्य थी पर फिर भी उन पर पुरुषों का नियन्त्रण था। अमीर खुसरो व अल्बरूनी ने भी लिखा है कि "स्त्रियों का जीवन नियन्त्रित था। विधवा होने पर अपेक्षा की जाती थी कि वह पति के साथ सती हो जाए अथवा जीवन पर्यन्त भिक्षुणियों के समान जीवनयापन करे। विधवा होना पूर्वजन्म के पापों का फल समझा जाता था परन्तु मुस्लिम विधवा को पुनः विवाह का अधिकार था।"

हिन्दुओं में पुत्र जन्म को शुभ व कन्या जन्म को अशुभ माना जाने लगा। राजपूतों की कुछ शाखाओं में तो कन्या जन्म के तुरन्त बाद उन्हें मार देने की परम्परा प्रारम्भ हो गई। राजपूतों में जौहर प्रथा भी प्रचलित थी। जब राजपूत राजाओं को विजय की आशा नहीं रहती थी और वे केसरिया वस्त्र पहनकर प्राणोत्सर्ग करने युद्ध भूमि में जाते थे तो उनकी पत्नियां अपने सतीत्व की रक्षा के लिए जलती आग में

कूदकर प्राणों की आहुति दे देती थीं। चित्तौड़ के राणा रतन सिंह की रानी पद्मिनी और रणथम्बौर के शासक राणा हमीरदेव की पत्नि ने इसी प्रकार प्राणों की आहुति दी थी।

सम्पूर्ण मुगल काल में भी महिलाओं ने उपेक्षा के इस दंश को सहन किया। यद्यपि अपवाद स्वरूप कुछ स्त्रियों का उदाहरण दिया जा सकता है जैसे कि रजिया सुल्तान, नूरजहां बेगम, जहांआरा और रौशनआरा जो शिक्षित थीं, विदुषी थीं और शासन करने की क्षमताओं से पूर्ण थीं। परन्तु उन्हें भी पुरुषों की घृणा व षड्यन्त्रों का शिकार होना पड़ा। रजिया सुल्तान के पतन का मुख्य कारण उसका स्त्री होना ही था। मुसलमान उसके पर्दा परित्याग से अप्रसन्न थे और एक महिला के सामने सिर झुकाने को तत्पर नहीं थे। उनका पुरुषत्व उन्हें ऐसा करने से रोकता था। अपवाद के रूप में बाबर की पुत्री गुलबदन बेगम का तथा मीराबाई का नाम भी उल्लेखनीय है जिनकी रचनाऐं इतिहास व साहित्य की अमूल्य निधि हैं।

19वीं शताब्दी में शिक्षा व विज्ञान की उन्नति के फलस्वरूप एक बार पुनः सामाजिक व धार्मिक रीति रिवाजों और परम्पराओं का मूल्यांकन किया जाने लगा। इस अवधि में ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, थियोसोफिकल आंदोलन, प्रार्थना समाज आदि सुधार आंदोलन हुए जिनका मूल उद्देश्य हिन्दू धर्म में सुधार करना था। फलतः इसके प्रवर्तकों ने इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया। राजा राममोहन राय ने सती प्रथा निषेध हेतु सफल प्रयास किए। धर्म व समाज सुधारकों के प्रयासों से बाल विवाह तथा कन्या शिशु हत्या वर्जित घोषित किए गए तथा विधवा पुनर्विवाह अधिनियम पारित हुआ। फलतः स्त्रियों के उत्पीड़न में कमी दृष्टिगोचर होने लगी। महिला शिक्षा का मार्ग उन्मुख हुआ।

सुधार आंदोलन के दौरान कई महिला संगठनों ने भी अपने प्रयासों से संविधान में स्त्री पुरुष को समान अधिकार दिलाने के सफल प्रयत्न किए। लिंग भेद को पूर्णतः समाप्त करने का प्रयास किया। विभिन्न सुधारकों जिनमें मैडम कामा, स्वर्ण कुमारी, रमाबाई जैसी कुछ विदुषी महिलाएं भी सम्मिलित थीं, ने महिलाओं में जागृति उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्वामी विवेकानन्द ने यह भी घोषित किया कि "वह देश और वह राष्ट्र जिसने स्त्रियों का आदर नहीं किया कभी भी महान नहीं बन सका और न ही कभी भविष्य में बन पाएगा।"

समाज सुधारकों द्वारा उठाए गए कदम महिला विमर्श की दिशा में महत्वपूर्ण सिद्ध हुए। मुस्लिम समाज भी इस प्रगति से अछूता नहीं रह सका। सर सैयद अहमद खाँ जैसे सुधारकों के प्रयत्नों से मुसलमानों में अंग्रेजी शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण बदला। मुस्लिम कन्याओं के लिए अलीगढ़ व लखनऊ में स्कूलों की स्थापना की गई जिससे धीरे धीरे महिलाओं में जागृति आने लगी और राजनीति में भी उन्होंने रुचि लेना प्रारम्भ कर दिया।

इन सभी प्रयासों के उपरांत भी, उस समय तक भारतीय महिलाओं की स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं हुआ, जब तक स्वयं महिलानेत्रियों ने स्वयं को इस कार्य में नहीं लगा दिया। अखिल भारतीय महिला परिषद् की स्थापना से पूर्व भारत में अनेक महिला संगठन बन चुके थे जिनमें कुछ उल्लेखनीय संगठन निम्न प्रकार हैं–
द लेडीज एसोसिएशन –(1886)
शारदा सदन –(1892)
महिला जोरास्ट्रियन मण्डल –(1903)
गुजराती हिन्दू स्त्री मण्डल
सेवासदन –(1909)
वुमेन्स इन्डियन एसोसिएशन –(1917)
वुमेन्स काउन्सिल आफ इण्डिया –(1920)
अखिल भारतीय महिला परिषद् –(1926)

अखिल भारतीय महिला परिषद् ने अनेक महत्वपूर्ण निर्णय लिए जैसे : लेडी इरविन कालेज की नींव रखी गई।

गांधी जी के आह्वान पर महिलाओं ने राजनीतिक संघर्ष में भाग लिया। उत्तराधिकार के प्रश्न पर गम्भीर विचार विमर्श किया गया। बर्लिन की इन्टरनेशनल कांग्रेस में भाग लेने कई महिलाएं विदेश गईं। समान अधिकारों के लिए एक ठोस कार्यक्रम बनाया गया। इस संस्था ने ग्राम सुधार, नारी शिक्षा, उत्तराधिकार बिल, विवाह अधिनियम, ग्राम्य चिकित्सा सेवा आदि महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर विचार किया तथा समस्याओं के हल का मार्ग प्रशस्त किया।

बीसवीं शताब्दी में राजनीति में महिलाओं के प्रवेश ने उनके सशक्तिकरण की दिशा में एक और महत्वपूर्ण कदम आगे बढ़ा दिया। सन् 1917 में श्रीमती एनी बेसेन्ट के नेतृत्व में महिलाओं को पुरुषों के समान मतदान करने की मांग को उठाया गया। सन् 1919 में महिला कार्यकत्रियों के प्रयासों से नई विधान परिषद् ने महिलाओं को सीमित मताधिकार दिए जाने का प्रस्ताव पारित कर दिया। सन् 1926 में उन्हें पुरुषों के समान मतदान का अधिकार प्राप्त भी हो गया । उसी वर्ष उन्हें चुनाव लड़ने का अधिकार भी मिल गया। स्वतन्त्र भारत में संविधान के अन्तर्गत समानाधिकारों की घोषणा के पश्चात् महिलाओं के लिए उच्च पदों पर पहुँचने का मार्ग भी उन्मुख हो गया।

आज महिलाएं प्रशासनिक सेवाओं, पुलिस विभाग, सेना, मेडिकल साइंस, इंजीनियरिंग व शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं। व्यापारिक संस्थानों में, बैंकों में वे उच्च पदों पर आसीन हैं। भारत ही नहीं विदेशों में भी अपनी क्षमताओं के बल पर उन्होंने भारत का प्रतिनिधित्व कर उसे गौरवान्वित किया है। आज की महिला अपेक्षाकृत सशक्त है फिर भी जनसंख्या की दृष्टि से विचार करें तो विकास का प्रतिशत आधे से भी कम दिखाई पड़ता है। शहरों से दूर स्थित गांवों में शिक्षा, स्वास्थ्य, कानूनी अधिकारों के प्रति जागरूकता, स्वच्छता, आर्थिक स्वावलम्बन जैसे मुद्दे हैं जिन पर पुनः विचार करना होगा।

आज भी समाज अपनी क्षुद्र व दोहरी मानसिकता से उबर पाने में सफल नहीं हो सका है। हमारी सरकार ने भ्रूण लिंग परीक्षण वर्जित कर रखा है किन्तु फिर भी अवैध रूप से परीक्षण किए जाते हैं जिससे कन्या भ्रूण हत्या को प्रोत्साहन मिल रहा है। इस पर पुनः विचार किया जाना चाहिए। कन्या भ्रूण हत्या जैसे जघन्य कृत्य पर कड़ा अंकुश लगाकर ही हम महिला विमर्श के सम्बंध में सोच सकते हैं।

सरकार द्वारा दहेज प्रथा उन्मूलन अधिनियम लागू करने के बाद भी कुछ स्वार्थी लोग इसमें संलिप्त हैं इसलिए अक्सर दुल्हन जलाने अथवा उसकी हत्या की खबरें समाचार पत्रों में छपती हैं और गरीब, कन्या जन्म को, दुख का मूल समझता है। ऐसी घिनौनी प्रथाओं का वास्तविक अन्त तभी सम्भव है जब कन्याओं को पुत्र के समान मानकर माता पिता उनकी लालन पालन करें, शिक्षा के समान अवसर प्रदान करें और सरकारें दहेज हत्या जैसे अपराधों के लिए शीघ्रातिशीघ्र निर्णय का प्रावधान करें, अभियुक्तों को कड़ी सजा दी जाए ताकि समाज के लिए वह एक उदाहरण बन सके।

भारत सरकार ने उपरोक्त दो अधिनियमों के अतिरिक्त दो अन्य अधिनियम भी पारित किए हैं जिनमें से एक – घरेलू हिंसा अधिनियम 2005 है जो महिलाओं को किसी भी प्रकार की हिंसा से सुरक्षा प्रदान करता है। दूसरा – कम्पलसरी रजिस्ट्रेशन ऑफ मैरिज एक्ट 2006 के अनुसार विवाह का पंजीयन अनिवार्य कर दिया गया है। घरेलू हिंसा अधिनियम में शारीरिक हिंसा के साथ ही मानसिक क्रूरता/प्रताड़ना को भी रेखांकित किया गया है। विवाह के अनिवार्य पंजीयन से किसी भी प्रकार से वैवाहिक अथवा सामाजिक अधिकारों का हनन रोका जा सकेगा। यह देश की बहुत सी महिलाओं की सहायता करेगा जो अपने पति द्वारा छोड़ी हुई हैं और जिनके पास अपनी विवाहित दशा को सिद्ध करने का माध्यम नहीं है। यह बाल विवाह, द्विपत्नीत्व, बहुविवाह जैसी प्रथाओं पर नजर व नियन्त्रण रखेगा। साथ ही महिलाओं को जीवन यापन (गुजारा भत्ता) सहायता दिलाने में, अपने बच्चों की निगरानी हासिल करने और विधवा उत्तराधिकार का अधिकार हासिल करने में सहायक होगा। ये भारतीय महिलाओं को सही तौर पर समर्थ बनाएगा जिससे कि वे अपने अधिकारों का पूर्णरूप से इस्तेमाल कर सकें। महिला सशक्तिकरण के क्रम में हमारे वर्तमान प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी जी द्वारा बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ योजना तथा सुकन्या–समृद्धि योजना का शुभारम्भ एक महत्वपूर्ण कदम है। जिसके द्वारा कन्या के जन्म तथा उसकी शिक्षा को प्रोत्साहन मिले

और लड़का लड़की के मध्य आए लिंगानुपात की गिरावट को रोका जा सके। (यह अनुपात 1000 लड़कों पर 918 लड़कियों का है)

हरियाणा के पानीपत में हुए इन योजनाओं के लोकार्पण समारोह में श्री नरेन्द्र मोदी ने कहाकि "लोग दोहरी मानसिकता रखते हैं। वे अपनी बेटियों की हत्या करते हैं जबकि शिक्षित बहुओं की इच्छा रखते हैं।" महिला व बाल विकास मन्त्री ने कहाकि "भारत में प्रतिदिन 2000 लड़कियों को मार दिया जाता है।" जोकि शर्मनाक है।

सरकारें अपना कार्य करती हैं लेकिन समाज का भी दायित्व है कि वह अपने बीच स्थित इन घृणित घटनाओं का विरोध करे। बलात्कार, छेड़छाड़, महिलाओं के प्रति घरेलू व कार्यस्थल पर होनेवाली हिंसा के विरूद्ध आज भी आवाज उठाने की आवश्यकता है ताकि उनकी पुनरावृत्ति को रोका जा सके। तभी महिला विमर्श जैसे शब्दों को वास्तविक स्वरूप दिया जा सकता है।

## संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. हंसा मेहता, द वुमन अंडर हिन्दू लॉ ऑफ मैरिज एण्ड सक्सेसन
2. श्यामकुमारी नेहरु, अवर काज
3. राजकुमारी अमृतकौर, चैलेंज टू वूमन
4. ए.टी. हिंगोरानी द्वारा सम्पादित, मोहनदास करमचंद गांधी के भाषणों का संकलन
5. टी. एस. राजगोपाल, इंडियन वुमन इन द न्यू एज
6. सी. चक्रपाणि एवं एस. विजय कुमार, चेजिंग स्टेटस एण्ड रोल ऑफ वुमन इन इंडियन सोसाइटी
7. अनीता शर्मा, मार्डनाइजेशन एण्ड स्टेटस ऑफ वर्किंग वुमन इन इंडिया

# "Symbolic Threads: Unraveling the Semiotic Tapestry of Indian Advertisements"

**Dr. Anshu Srivastava**
Assistant Professor, Department of Fine arts (Applied Arts)
Swami Vivekanand Subharti University,Meerut

**Abstract:**

This research paper navigates the intricate tapestry of semiotics within the realm of Indian advertisements, exploring the profound layers of cultural symbols, signs, and meanings woven into the fabric of marketing communication. Titled "Symbolic Threads: Unraveling the Semiotic Tapestry of Indian Advertisements," this study delves into the dynamic interplay between ancient and contemporary semiotics, examining how advertisers strategically leverage cultural symbols to connect with diverse audiences.

The research investigates the historical roots of semiotics in Indian culture, spanning symbols from mythology, art, and traditions. It endeavors to unravel the symbolic threads that persist in modern advertising, drawing connections between the timeless and the contemporary.

Utilizing a comparative approach, the study analyzes a spectrum of advertisements across industries, regions, and time periods. Through qualitative and quantitative methods, it seeks to identify patterns, variations, and trends in the incorporation of semiotic elements, shedding light on the evolving landscape of cultural communication in the Indian advertising sphere.

With a focus on cultural sensitivity, the research addresses the ethical dimensions of utilizing ancient semiotics, acknowledging potential challenges and opportunities in aligning brand messages with cultural heritage. It explores the impact of these symbolic communications on consumer perceptions, aiming to uncover how ancient semiotics contributes to brand identity and consumer engagement.

The significance of this research lies in its potential to inform marketers, advertisers, and scholars about the nuanced strategies employed in Indian advertising. By unraveling the symbolic threads, the study aims to provide practical insights for creating culturally resonant campaigns and contribute to the broader discourse on the intersection of culture and marketing.

**Keywords:** Semiotics, Indian advertisements, Cultural symbols, Ancient and contemporary semiotics, Brand Identity, Consumer Perception.

## 1. Introduction

In the dynamic landscape of advertising, the use of semiotics has become a crucial tool for marketers seeking to establish connections with culturally diverse audiences. This research delves into the symbiotic relationship between ancient Indian semiotics and contemporary advertising practices. As India boasts a rich tapestry of cultural symbols deeply embedded in its history, this study aims to unravel the symbolic threads that persist in modern advertising.

**Overview of Semiotics in Indian Advertisements:** Semiotics, the study of signs and symbols, serves as a lens through which we can interpret the layers of meaning within advertisements. In the Indian context, where cultural diversity is abundant, semiotics plays a pivotal role in conveying nuanced messages that resonate with a wide array of audiences.

Semiotics[1] is the study of how an idea or object communicates meaning, what meaning it communicates and which associations it brings forth. In semiotics, meaning is considered through the interplay between a signifier (the representation of a concept) and signified (the concept itself).

Semiotics is the study of signs and sign using behavior. The Swiss linguist Ferdinand de Saussure one of its founders, defined as the study of "the life of signs with in society." Although semiotics word was used in this sense in the 17th century, by the English philosopher, John Locke. "From a research point of view, semiotics is just about stepping back from the consumer and looking at the culture"

Saussure breaks things down into the *signifier* and the *signified*.

**Signifier:** a sign's physical form (such as a sound, printed word, or image) as distinct from its meaning.

**Signified:** the meaning or idea expressed by a sign, as distinct from the physical form in which it is expressed.

"The relationship between the signifier and the signified is arbitrary."

*-Saussure, Course In General inguistics*[2]

**Cultural difference and interpretation of codes:**

Difference in reading of the same text can be attributed to many factors, one ofthem being the cultural difference. This can also be understood from the phrase'aberrant decoding' proposed by Umberto Eco, an Italian Semiotician, whichmeans that there can be a different between the codes inserted into a message byits creators and the codes of the audience. This may lead to a situation where themessages are decoded in a manner not intended by its original creators. This

happens because of the cultural differences among the people and its influenceon their understanding of the message codes. For e.g., white is associated withthe idea of virginity and purity in the western societies and is thus adorned in theform of bridal attire. Compare this with the Indian society, where white isassociated with widowhood and is not worn on auspicious occasions, speciallyweddings. The effect of cultural difference can be explained using the concept ofConnotation and Denotation:

**Connotation[3]-** is derived from the Latin word 'connotation' which means 'to markalong with'. It is the cultural meaning attached to a term. For example, the image of actor Akshay Kumar on a film's poster will associate it with the idea of bravery, honesty, patriotism, etc.

**Denotation[4]-** on the other hand means the literal meaning of a term, figure, object,etc. For example, the denotation of the name Akshay Kumar is simply an actor inthe popular Hindi film industry. This is the literal meaning of the words Akshay Kumar. Thus, it can be observed that a word, text, object, figure, etc., can have differentconnotations to it along with its literal meaning which is known as the denotation.

**Symbols are powerful communicators because there's no limit of what it can represent.**

[1] Semiotics refers to the study of signs and symbols as elements of communicative behavior, analyzing how meaning is created and interpreted through cultural and social codes.

[2] Ferdinand de Saussure, *Course in General Linguistics*, ed. Charles Bally and Albert Sechehaye, trans. Wade Baskin (New York: McGraw-Hill, 1966).

[3] Connotation refers to the implied or suggested meanings and associations that a sign evokes, beyond its literal or primary definition.

[4] Denotation refers to the straightforward, literal meaning of a sign, distinct from any associated or implied meanings.

The world around us is bursting with objects, dialogue, life, symbols – everything just waiting to be made sense of. As human beings, we use language to navigate our way through it all. But the way it works is mind-boggling. Why does a certain combination of letters get assigned to a particular object? And why can these changes completely and still be recognized by another culture?

**Symbols as Threads**

In the metaphorical context of this research, symbols are likened to threads that connect various elements within the semiotic tapestry of Indian advertisements. These threads, like cultural symbols, carry meanings, values, and associations that advertisers strategically intertwine to create a cohesive and resonant narrative.

Today, study of Semioticsis carried out by a wide range of scholars, historians, scientists,linguists,sociologists, etc and finds application in a variety of fields, ranging fromadvertising to films to even folk cultures.The study of signs and symbols gives researchers an understanding of how humanbrain associates and jumps from one idea to another, merely with the help of fewsymbols. It also throws light on the sphere of human understanding and psyche.The study of semiotics is also used in the media where signs and symbols play animportant role in communicating certain meanings to the people. For example,the representation of a particular individual in cinema using how they dress up orhow they speak can point towards their character traits, and how the audience perceives this individual.[1]

**Examples:**

**Auspicious Symbols in Jewelry Ads:**

Symbolic Thread: The use of symbols like the lotus, Om, or Swastika in jewelry advertisements.

Explanation: In Indian culture, these symbols represent purity, auspiciousness, and spirituality. By incorporating them into jewelry ads, advertisers thread a narrative of not just adornment but also of cultural significance and positive connotations.

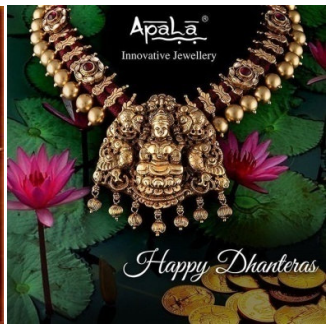

**Traditional Attire in Apparel Ads:**

Symbolic Thread: Depicting individuals in traditional attire in clothing advertisements.

Explanation: Attire carries cultural symbols, and showcasing individuals in traditional clothing threads a narrative of cultural pride and identity. It aligns the brand with tradition and resonates with consumers' sense of heritage.

[1] Chandler, Daniel. *Semiotics: The Basics*. 2nd ed., Routledge, 2007.

**Bollywood Celebrities as Cultural Icons:**

Symbolic Thread: Featuring Bollywood celebrities in various product ads.

Explanation: Bollywood stars represent more than just entertainment; they embody cultural icons. Advertisers use these figures as threads to connect *their* products with aspirational qualities and cultural trends, leveraging the celebrities' influence.

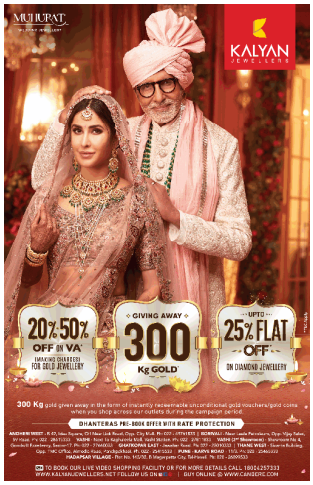


**Regional Symbolism in Food Ads:**

Symbolic Thread: Highlighting regional symbols or festivals in food advertisements.

Explanation: Food is deeply tied to cultural identity. Advertisers thread narratives around regional symbols or festivals to evoke a sense of authenticity and connect the cuisine with local traditions.

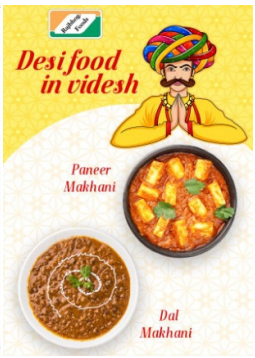

**Use of Folk Art in Home Decor Ads:**

Symbolic Thread: Incorporating traditional Indian folk art patterns in home decor advertisements.

Explanation: Folk art is a visual language that represents cultural diversity. Advertisers use these patterns as threads to narrate stories of craftsmanship, authenticity, and a connection to Indian roots.

**Unraveling the Tapestry:**The research metaphorically "unravels" the tapestry by dissecting these symbolic threads. It involves a detailed analysis of how symbols are strategically integrated, the meanings they carry, and how consumers interpret them. Through this unraveling, the research aims to reveal the layers of cultural significance, creating a comprehensive understanding of the semiotic landscape in Indian advertisements.[1]

**Significance of Cultural Symbols in Marketing:** Cultural symbols act as bridges between brands and consumers, offering a shared language that transcends linguistic and regional barriers. Understanding and leveraging these symbols allow advertisers to tap into the collective consciousness of a society, fostering a deeper connection with consumers. These symbols encompass elements such as icons, rituals, colors, gestures, and even specific objects that hold significant cultural meaning within a society. Understanding and effectively leveraging these symbols offer advertisers several key advantages:[2]

1. **Shared Language and Meaning:** Cultural symbols provide a shared language that transcends linguistic and regional barriers. They encapsulate deep-rooted meanings and associations that are readily understood by members of a particular culture or society. For instance, a symbol like the lotus flower in Indian culture represents purity and beauty, and its

[1] Mick, David Glen. "Consumer Research and Semiotics: Exploring the Morphology of Signs, Symbols, and Significance." *Journal of Consumer Research*, vol. 13, no. 2, 1986, pp. 196-213.

[2] Mueller, Barbara. *Dynamics of International Advertising: Theoretical and Practical Perspectives*. 2nd ed., Peter Lang, 2011.

use in advertisements can evoke emotional connections and resonance among consumers familiar with these cultural connotations.

**2. Emotional Connection:** By tapping into cultural symbols, advertisers can evoke strong emotional responses from consumers. These symbols often carry historical, religious, or societal significance, which can trigger feelings of nostalgia, pride, or belonging. Such emotional connections foster a deeper relationship between the brand and its target audience, enhancing brand loyalty and engagement.

**3. Cultural Relevance and Authenticity:** Incorporating cultural symbols demonstrates a brand's sensitivity to local customs, traditions, and values. It signals authenticity and respect for the cultural context in which the brand operates, thereby enhancing its credibility and acceptance among consumers. Brands that successfully integrate cultural symbols into their marketing strategies demonstrate a deeper understanding of their audience's preferences and cultural sensitivities.

**4. Differentiation and Recognition:** Cultural symbols can also serve as distinctive identifiers that set a brand apart from its competitors. When used thoughtfully and creatively, these symbols can make a brand more memorable and recognizable in a crowded marketplace. They help in creating a unique brand identity that resonates with the target audience, contributing to brand differentiation and market positioning.

**5. Facilitating Cultural Exchange:** In a globalized world, cultural symbols in marketing enable brands to participate in cultural exchange and dialogue. They facilitate mutual understanding and appreciation across diverse communities, fostering a sense of inclusivity and connection. Brands that embrace cultural symbols responsibly can contribute to cultural enrichment while expanding their market reach globally.

**1. Tanishq - Ekatvam (Unity) Campaign:**

- Tanishq, a renowned jewelry brand in India, launched the "Ekatvam" campaign that celebrated diversity and unity in Indian society. The advertisement featured individuals from different cultural backgrounds coming together to celebrate a wedding, emphasizing unity amidst diversity. The use of traditional attire, rituals, and symbols like the auspicious mangalsutra (a sacred necklace worn by married women) resonated deeply with Indian cultural values of harmony and togetherness.

**2. Amul - The Taste of India Campaign:**

- Amul, a leading dairy brand in India, is known for its iconic advertisements that often incorporate humor and cultural references. Their "The Taste of India" campaign showcases various facets of Indian culture through witty and relatable advertisements featuring their mascot, the Amul girl. These ads often reference current events, festivals, and cultural icons, making them highly engaging and resonant with Indian consumers across different regions.

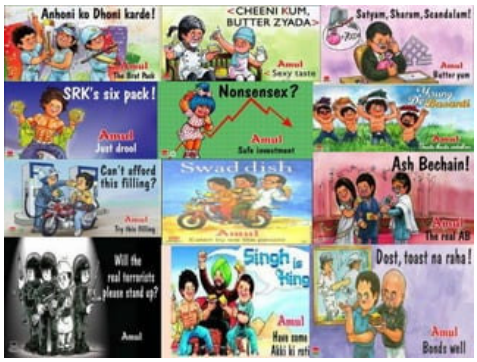


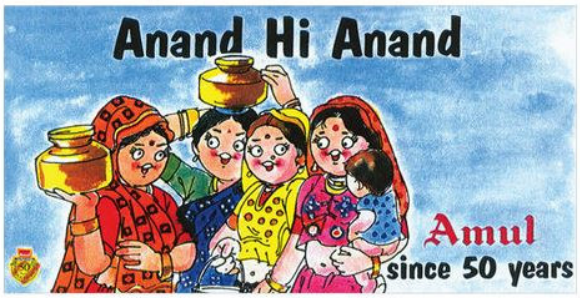


Celebrating fifty years of Amul.

**3. Surf Excel - Daag Achhe Hain Campaign:**

- Surf Excel's "Daag Achhe Hain" (Stains are Good) campaign has been well-received in India for its heartwarming stories that often revolve around festivals and cultural values. One memorable advertisement from this campaign showed a young girl helping her Muslim friend to play Holi (a Hindu festival of colors), despite facing resistance from adults. The advertisement beautifully captured the spirit of unity, friendship, and inclusivity, resonating deeply with Indian cultural values of harmony and acceptance.

**4. Fevicol - Fevicol Marine Ad Campaign :**

- Fevicol, a popular adhesive brand in India, is known for its humorous and creative advertisements that often incorporate cultural elements. The Fevicol Marine ad campaign featured humorous situations where the strength of Fevicol Marine glue was showcased through exaggerated scenarios rooted in Indian cultural contexts, such as traditional woodworking or construction practices.

5. Cadbury Dairy Milk - Shubh Aarambh Campaign:

- Cadbury Dairy Milk's "Shubh Aarambh" (A Good Beginning) campaign emphasized the joy of sharing and celebrations in Indian families. The advertisements typically featured joyful moments during Indian festivals or family gatherings, where Cadbury chocolates were portrayed as a symbol of happiness and togetherness, reinforcing cultural values of sharing and celebration.

In essence, cultural symbols in marketing serve as powerful tools for building meaningful connections between brands and consumers. They enable advertisers to communicate messages that are not only understood but also embraced within specific cultural contexts, thereby influencing consumer behavior and perception positively. By respecting and leveraging these symbols, brands can effectively navigate cultural diversity, enhance engagement, and establish enduring relationships with their target audiences.[1]

These examples illustrate how Indian advertisements effectively integrate cultural symbols, traditions, and values to create compelling narratives that resonate with diverse audiences across the country. By understanding and leveraging these cultural symbols, brands can forge deeper connections with consumers and strengthen their brand positioning in the Indian market.

**Conclusion:** "Symbolic Threads" encapsulates the dynamic interplay between symbols and advertising narratives in India. By exploring and unraveling these threads, the research seeks to decode the semiotic language, providing insights into how advertisers craft compelling stories that resonate with the diverse and culturally discerning audience in the Indian market. In conclusion, the exploration of Indian advertisements through the lens of semiotics reveals a rich tapestry of symbols, meanings, and cultural contexts. The study has highlighted how advertisers strategically employ symbols to convey deeper messages that resonate with diverse audiences across India. Through decoding these symbolic threads, we have gained insights into the complexities of consumer behavior, cultural identity, and the evolving dynamics of communication in advertising. This research underscores the importance of semiotics in understanding the nuanced ways in which advertisements communicate and influence perceptions. Moving forward, continued investigation into symbolic strategies in advertising will be crucial for both academics and practitioners seeking to navigate and harness the power of cultural symbolism in marketing contexts.

**References:**

1. Ghosal, S., & Raghuram, S. (Eds.). (2016). “Indian Advertising: Laughter and Tears”. Routledge.
2. Dutta, S., & Subramanian, G. (2014). The impact of culture on advertising effectiveness: A study of Indian and Swedish consumers. “International Journal of Indian Culture and Business Management, 8” (4), 490-508.
3. Jha, P. (2018). The semiotics of advertising in India: A thematic analysis. “Journal of Media Critiques, 4” (14), 97-115.
4. Sinha, A. (2017). Cultural implications in advertising: An analytical study of selected Indian television commercials. “International Journal of Innovation in Engineering, Science and Management, 6”(7), 84-91.
5. Dholakia, R. R. (2014). India's advertising revolution: Economic and cultural change in the late 20th century. “Indian Advertising: Historical and Cultural Perspectives, 15”(3), 327-345.
6. Roy, A. (2019). Semiotics and Indian advertising: A comparative analysis of selected brands. “International Journal of Research in Humanities, Arts and Literature, 7”(3), 23-34.

[1] Holt, Douglas B. *How Brands Become Icons: The Principles of Cultural Branding*. Harvard Business Review Press, 2004.

# भारत में लोकतांत्रिक अर्थशास्त्र की रक्षा में मीडिया की भूमिका : एक कानूनी सिद्धांत

**– डॉ. पुष्पेंद्र कुमार मुशा**
सहायक प्रोफेसर, विधि विभाग, विधि संकाय,
जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर, राजस्थान

## सारांश

यह शोध पत्र भारतीय संदर्भ में लोकतांत्रिक मूल्यों को संरक्षित करने और बढ़ावा देने में मीडिया द्वारा निभाई गई अपरिहार्य भूमिका पर प्रकाश डालता है, जिसमें इसकी गतिविधियों को रेखांकित करने वाले कानूनी ढांचे पर एक विशिष्ट लेंस भी शामिल है। एक राष्ट्र–राज्य में जहाँ लोकतांत्रिक ढाँचा शासन की आधारशिला के रूप में कार्य करता है, मीडिया एक प्रहरी के रूप में कार्य करता है, आवश्यक लोकतांत्रिक आदर्शों को कायम रखता है, और एक पारदर्शी व्यक्ति जवाबदेह और सूचित समाज को बढ़ावा देता है। यह पत्र बहुआयामी तरीकों की जाँच करता है जिसमें मीडिया लोकतंत्र के संरक्षक के रूप में अपना कार्य पूरा करता है और मीडिया और कानूनी संरचनाओं के बीच सहजीवी संबंध की जाँच करता है जो इसके संचालन के लिए आवश्यक संरचना प्रदान करते हैं। परिचय भारत के लोकतांत्रिक ताने–बाने का अवलोकन प्रदान करता है, जो मीडिया की अपरिहार्य भूमिका से जटिल है। देश में मीडिया गतिविधियों को विनियमित करने वाले कानूनी ढांचे की रूपरेखा तैयार की गई है, जो संवैधानिक प्रावधानों और कानूनों पर प्रकाश डालती है जो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और प्रेस की स्वतंत्रता की रक्षा करते हैं। यह इन अधिकारों और कानूनी बाधाओं के बीच गतिशील अंतर्संबंध का पता लगाता है जो कुछ स्थितियों में व्यक्तिगत स्वतंत्रता को सामाजिक हितों के साथ समेटने के लिए लगाए जा सकते हैं।

लोकतंत्र के पोषण में मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका को अगले खंडों में उजागर किया गया है। खोज पत्रकारिता एक शक्तिशाली उपकरण के रूप में सामने आती है जो भ्रष्टाचार और कदाचार को उजागर करती है, व्यवस्था की अखंडता को मजबूत करती है। सूचित मतदाताओं की सुविधा प्रदान करके, मीडिया राजनीतिक भागीदारी और मतदाता शिक्षा को बढ़ावा देता है, जिससे नागरिक विवेकपूर्ण विकल्प चुनते हैं। सार्वजनिक मुद्दों, नीतिगत बहस और सार्वजनिक प्राधिकरणों की जांच के बारे में मीडिया कवरेज जवाबदेही को बढ़ाता है, जिससे लोगों के हितों के साथ शासन का संरेखण होता है।

नैतिक विचारों का इस प्रवचन में महत्वपूर्ण स्थान है। पत्रकारिता की अखंडता को बनाए रखने के साधन के रूप में भारतीय प्रेस परिषद द्वारा समर्थित स्व–नियमन के तंत्र की जांच की जाती है। पेपर उद्देश्यों, वस्तुनिष्ठता, सटीकता और निष्पक्षता सुनिश्चित करने के लिए मीडिया की जिम्मेदारियों की जांच करता है, साथ ही गलत सूचना प्रसारित करने या अभद्र भाषा का सहारा लेने के कानूनी प्रभावों की भी जांच करता है।

मीडिया की अपरिहार्य भूमिका को स्वीकार करते हुए, समाचार पत्र को मीडिया संस्थानों द्वारा सामना की जाने वाली कानूनी चुनौतियों और दबावों का भी सामना करना पड़ता है। मानहानि कानून एक दोधारी तलवार के रूप में उभरता है जो संभावित रूप से खोजी पत्रकारिता को खत्म कर सकता है। सूचना तक पहुँच और स्रोत सुरक्षा की लड़ाई उन कठिन कानूनी लड़ाइयों को रेखांकित करती है जिनसे पत्रकार अक्सर जूझते हैं। सेंसरशिप प्रयासों के भयावह प्रभावों और प्रेस की स्वतंत्रता के लिए खतरों का भी विश्लेषण किया गया है।

डिजिटल युग अपनी तरह की चुनौतियाँ लेकर आता है, जिसमें सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम के तहत ऑनलाइन मीडिया और सोशल प्लेटफॉर्म का विनियमन शामिल है। लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं से निपटने के लिए फर्जी खबरों और प्रचार रणनीतियों के बीच नाजुक संतुलन और ऑनलाइन सुरक्षा सुनिश्चित करने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा के बीच नाजुक संतुलन की जाँच की जाती है। केस स्टडीज पेपर में अनुभवजन्य महत्व जोड़ते हैं, ऐसे उदाहरणों पर प्रकाश डालते हैं जहाँ मीडिया सतर्कता ने लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा की। इसके अलावा, विश्लेषण में मीडिया आउटलेट और पत्रकारों द्वारा अपने अधिकारों और जिम्मेदारियों की रक्षा के लिए लड़ी गई ऐतिहासिक कानूनी लड़ाइयाँ भी शामिल

हैं। प्राप्त अंतर्दृष्टि के आधार पर, यह पेपर लोकतंत्र में मीडिया की भूमिका को मजबूत करने के लिए कार्रवाई योग्य सिफारिशों पर समाप्त होता है। कानूनी ढांचे में सुधार, मीडिया साक्षरता बढ़ाने और मीडिया, नागरिक समाज और कानूनी विशेषज्ञों के बीच सहयोग को बढ़ावा देने के प्रस्तावों को रेखांकित किया गया है। शोध रेखांकित करता है कि मीडियामित्रिया, कानूनी ढांचे के मापदंडों के भीतर काम करते हुए, भारत में लोकतांत्रिक मूल्यों को मजबूत करने के लिए एक धुरी के रूप में कार्य करता है। सूचना के प्रसारण, सत्ता की जांच और जनमत को संगठित करने के माध्यम से, मीडिया न केवल एक महत्वपूर्ण माध्यम बन जाता है, बल्कि लोकतंत्र का एक मजबूत संरक्षक भी बन जाता है। इस सहजीवी संबंध में, जहां मीडिया लोकतंत्र का पोषण करता है और लोकतंत्र मीडिया की स्वतंत्रता की रक्षा करता है, प्रत्येक की जीवन शक्ति बढ़ती है, जो भारत के लोकतांत्रिक भवन को मजबूत बनाती है।

**शब्दकुंजी :** भारत, लोकतंत्र, मीडिया, भ्रष्टाचार, सामाजिक जिम्मेदारी, सार्वजनिक क्षेत्र

## प्रस्तावना –

**भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था की पृष्ठभूमि और मीडिया पर इसकी निर्भरता।**

भारत, दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र, 1947 में स्वतंत्रता के बाद के युग में लोकतांत्रिक शासन का एक समृद्ध इतिहास रखता है। कई भाषाओं, संस्कृतियों और धर्मों के साथ एक राष्ट्र राष्ट्र राष्ट्र के रूप में, लोकतांत्रिक संरचना को एक आदर्श तरीके के रूप में चुना गया था। अपनी विशाल आबादी के हितों को समायोजित और प्रतिनिधित्व करें। भारतीय लोकतांत्रिक प्रणाली प्रतिनिधि सरकार सरकार, कानून के शासन, शक्तियों के पृथक्करण और व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा के सिद्धांतों पर आधारित है।

स्वतंत्रता के बाद लोकतांत्रिक परिवर्तनः भारत में लोकतंत्र में परिवर्तन 1950 में एक लिखित संविधान को अपनाने से चिह्नित किया गया था, जिसने सरकार की संसदीय प्रणाली की स्थापना की। पश्चिमी लोकतंत्र और स्वदेशी दर्शन सहित कई स्रोतों से प्रभावित भारत का संविधान शासन के लिए एक कानूनी संरचना प्रदान करता है। यह सरकार की विभिन्न शाखाओं की शक्तियों और जिम्मेदारियों को सही करके मौलिक अधिकारों और स्वतंत्रता को सुनिश्चित करता है।

### भारतीय लोकतंत्र की प्रमुख विशेषताएँ

सार्वभौमिक वयस्क मताधिकारः 18 वर्ष से अधिक आयु के प्रत्येक नागरिक को व्यापक आधार वाली राजनीतिक भागीदारी सुनिश्चित करके मतदान का अधिकार है।

बहुदलीय प्रणालीः भारत एक जीवंत बहुदलीय राजनीतिक प्रणाली का दावा करता है, जिसमें कई दल विविध हितों और विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं।

स्वतंत्र न्यायपालिकाः न्यायपालिका एक स्वतंत्र निकाय के रूप में कार्य करती है, कानून के शासन की रक्षा करती है और नागरिकों के अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित करती है।

धर्मनिरपेक्षताः धर्मनिरपेक्षता के प्रति भारत की प्रतिबद्धता यह सुनिश्चित करती है कि राज्य धर्म के मामलों में तटस्थ रहे और सभी धर्मों के साथ समान व्यवहार करे।

स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनावः सरकार के विभिन्न स्तरों पर नियमित चुनाव नागरिकों को अपने प्रतिनिधि चुनने की अनुमति देते हैं, जो सत्ता में बैठे लोगों की जवाबदेही में योगदान करते हैं।

भारत के लोकतंत्र में मीडिया की भूमिकाः भारत की लोकतांत्रिक प्रणाली में मीडिया की भूमिका सर्वोपरि है। यह चौथी संपत्ति के रूप में कार्य करता है, सरकार की शक्ति को नियंत्रित करता है और सूचित नागरिकता को बढ़ावा देता है। यह भूमिका संविधान में निहित अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और प्रेस की स्वतंत्रता के सिद्धांतों से गहराई से जुड़ी हुई है।

1. सूचना का प्रसारः भारत जैसे विशाल और विविधतापूर्ण देश में मीडिया सरकार और नागरिकों के बीच सेतु का काम करता है। यह नीतियों, कानूनों और विकास के बारे में जानकारी प्रसारित करता है, जिससे नागरिकों को सूचित और जुड़ने में मदद मिलती है।

2. सार्वजनिक जांचः मीडिया सरकारी अधिकारियों के कार्यों की जांच और रिपोर्टिंग करके उन्हें जवाबदेह बनाता है। भ्रष्टाचार, दुराचार और विकलांगता, यह सुनिश्चित करते हैं कि सत्ता में बैठे लोग जनता के प्रति जवाबदेह हों।
3. एजेंडा सेटिंगः मीडिया महत्वपूर्ण मुद्दों को उजागर करके सार्वजनिक चर्चा को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह राष्ट्रीय एजेंडा को प्रभावित करता है और नीति निर्माताओं को गंभीर चिंताओं को हल करने के लिए प्रोत्साहित करता है।
4. मतदाता शिक्षाः लोकतंत्र में, एक सूचित मतदाता आवश्यक है। मीडिया उम्मीदवारों, पार्टियों और उनके मंचों के बारे में जानकारी प्रदान करता है, जो मतदाताओं को चुनाव के दौरान उचित विकल्प चुनने में मदद करता है।
5. बहुलवाद को बढ़ावा देनाः भारत के विभिन्न सामाजिक ताने–बाने को देखते हुए, मीडिया एक समावेशी लोकतांत्रिक संस्कृति को बढ़ावा देते हुए आवाजों, विचारों और दृष्टिकोणों की एक विस्तृत श्रृंखला दिखाता है।
6. जनमत संग्रह निर्माणः मीडिया नीतियों, सामाजिक मुद्दों और शासन सहित विभिन्न मामलों पर जनता की राय को प्रभावित करता है, जो समग्र राजनीतिक परिदृश्य को आकार देता है।
7. सामाजिक परिवर्तन के लिए उत्प्रेरकः मीडिया ने सामाजिक अन्याय के बारे में जागरूकता बढ़ाने, हाशिए पर पड़े समुदायों की वकालत करने और प्रगतिशील सुधारों को चलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

मीडिया के लिए कानूनी सुरक्षा उपायः भारतीय संविधान अनुच्छेद 19 (1) (ए) के तहत मौलिक अधिकार के रूप में भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की गारंटी देता है। हालाँकि, यह अधिकार पूरा नहीं हुआ है और सार्वजनिक व्यवस्था, शालीनता और अन्य विचारों के हित में उचित प्रतिबंधों के अधीन है। न्यायपालिका ने इन अधिकारों को समझाने और उन्हें बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, अक्सर मीडिया की स्वायत्तता और जनता के जानने के अधिकार की रक्षा की है।

## शोध पद्धति

इस अध्ययन के लिए नियोजित पद्धति में डिजिटल मीडिया, विनियमन और लोकतंत्र के बीच जटिल अंतर्संबंध को व्यापक रूप से संबोधित करने के लिए कई दृष्टिकोण शामिल हैं। संपूर्ण साहित्य समीक्षा अकादमिक स्रोतों, कानूनी दस्तावेजों, नीति रिपोर्टों और प्रासंगिक केस स्टडीज से प्राप्त विषय की एक मौलिक समझ स्थापित करेगी। आईटी अधिनियम और इसके निहितार्थों का गहन कानूनी विश्लेषण विनियामक परिदृश्य को उजागर करेगा, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, सामग्री मॉडरेशन और जवाबदेही पर इसके प्रभाव पर जोर देगा। व्यावहारिक अंतर्दृष्टि प्रदान करने के लिए, केस स्टडीज फर्जी समाचार, ऑनलाइन उत्पीड़न और निगरानी से संबंधित उल्लेखनीय घटनाओं का विश्लेषण करेगी, विभिन्न हितधारकों द्वारा उपयोग की जाने वाली प्रभावी और अप्रभावी रणनीतियों पर प्रकाश डालेगी। मीडिया संगठनों, नागरिक समाज समूहों, कानूनी विशेषज्ञों और नियामक निकायों के प्रतिनिधियों के साथ साक्षात्कार आयोजित करने से गुणात्मक दृष्टिकोण मिलेगा, जो वास्तविक दुनिया के दृष्टिकोण से विश्लेषण को समृद्ध करेगा। सर्वेक्षण के रूप में मात्रात्मक विश्लेषण मीडिया की विश्वसनीयता, मीडिया साक्षरता के स्तर और ऑनलाइन निगरानी के दृष्टिकोण के बारे में जनता की धारणाओं का आकलन करेगा, जो अनुभवजन्य डेटा में अनुसंधान को आधार बनाएगा। अन्य देशों के विनियामक नियामकों का तुलनात्मक विश्लेषण विनियामक वृद्धि के लिए अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ और संभावित बेंचमार्क प्रदान करके अध्ययन को और समृद्ध करेगा। शोध प्रक्रिया के दौरान, डेटा के लिए जिम्मेदार संग्रह, उपयोग और प्रसार को सुनिश्चित करने के लिए नैतिक विचारों पर अत्यधिक ध्यान दिया जाएगा। इन विविध तरीकों का जश्न मनाते हुए, इस अध्ययन का उद्देश्य लोकतंत्र में डिजिटल मीडिया की भूमिका और इसे आकार देने वाले नियामक ढांचे से संबंधित चुनौतियों और अवसरों की व्यापक और सूक्ष्म समझ प्राप्त करना है।

## अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और प्रेस की स्वतंत्रता

### संवैधानिक प्रावधान जो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और प्रेस की स्वतंत्रता की रक्षा करता है

भारतीय संविधान अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और प्रेस की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए एक मजबूत आधार प्रदान करता है। अनुच्छेद 19 (1) (ए) स्पष्ट रूप से भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार को मौलिक अधिकार के रूप में गारंटी देता है, नागरिकों को अपनी राय व्यक्त करने, विचारों को व्यक्त करने की स्वतंत्रता को मान्यता देता है। इसमें न केवल मौखिक संचार बल्कि लिखित, दृश्य और प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति भी शामिल है। न्यायपालिका ने लगातार पुष्टि की है कि एक जीवंत लोकतंत्र सूचना के मुक्त प्रवाह और विविध तरीकों पर पनपता है, जिससे इन अधिकारों की संवैधानिक सुरक्षा भारत की लोकतांत्रिक संरचना का एक अभिन्न अंग बन जाती है। इसके अलावा, प्रेस की स्वतंत्रता का महत्व इन प्रावधानों में निहित है, क्योंकि एक स्वस्थ लोकतंत्र के कामकाज के लिए एक सुविख्यात नागरिक आवश्यक है।

## ऐतिहासिक कानूनी मामले

भारत में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और प्रेस की स्वतंत्रता की रूपरेखा को आकार देने में कई ऐतिहासिक कानूनी मामले महत्वपूर्ण रहे हैं। बृज भूषण बनाम दिल्ली राज्य (1950) के मामले ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर भारतीय सर्वोच्च न्यायालय की पहली बड़ी घोषणा की पहचान की। न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया कि बोलने पर प्रतिबंध न्यूनतम होना चाहिए, जो समाज के सबसे महत्वपूर्ण हितों की पूर्ति के लिए ही हो। केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973) के मामले में ''बुनियादी ढांचे'' की अवधारणा को पेश किया गया था, यह सिद्धांत इस बात की पुष्टि करता है कि यद्यपि संसद संविधान में संशोधन कर सकती है, लेकिन वह मौलिक अधिकारों सहित इसके मूल सिद्धांतों को नहीं बदल सकती है। एस. रंगराजन बनाम पी. जगजीवन राम (1989) मामले में, न्यायालय ने असहमति के विचारों के लिए सहिष्णुता के महत्व को रेखांकित किया, यह मानते हुए कि बोलने पर प्रतिबंध संकीर्ण रूप से तैयार किया जाना चाहिए और अस्पष्ट या व्यापक नहीं होना चाहिए। इनमें से प्रत्येक मामले, अन्य के साथ, इन महत्वपूर्ण अधिकारों के दायरे और सीमाओं को स्पष्ट करने में शामिल है।

## अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को कानूनी सीमाओं के साथ संतुलित करें

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार को संभावित कानूनी सीमाओं के साथ संतुलित करने का नाजुक काम भारत के कानूनी परिदृश्य के केंद्र में है। जबकि संविधान इन अधिकारों की गारंटी देता है, अनुच्छेद 19 (2) सार्वजनिक व्यवस्था, शालीनता, नैतिकता, सुरक्षा, मानहानि और अपराध सहित नींव पर उचित प्रतिबंधों की रूपरेखा तैयार करता है। न्यायपालिका को इन प्रतिबंधों की वैधता निर्धारित करने, यह सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी सौंपी गई है कि वे एक लोकतांत्रिक समाज में आनुपातिक और आवश्यक हैं। इन अधिकारों और सीमाओं के बीच संतुलन एक सूक्ष्म प्रक्रिया है, जो विभिन्न कारकों जैसे कि कुछ अभिव्यक्तियों से संभावित नुकसान, व्यापक सामाजिक संदर्भ और राज्य के वैध हितों से प्रभावित होती है। न्यायिक उदाहरण इस संतुलन को परिष्कृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, अदालतें अक्सर एक समग्र दृष्टिकोण अपनाती हैं जो संभावित दुरुपयोग से रक्षा करके लोकतांत्रिक प्रक्रिया की पवित्रता को बनाए रखती है।

संक्षेप में, संवैधानिक प्रावधानों द्वारा रेखांकित और ऐतिहासिक मामलों से प्रभावित भारतीय कानूनी संरचना एक लोकतांत्रिक समाज में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और प्रेस की स्वतंत्रता के सर्वोच्च महत्व को मान्यता देती है। न्यायालयों द्वारा इन अधिकारों और उनकी कानूनी सीमाओं के बीच बातचीत यह सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण है कि भारत का जीवंत लोकतंत्र खुलेपन, विविधता और सूचित प्रवचन के सिद्धांतों पर आधारित हो।

## लोकतंत्र को बढ़ावा देने में मीडिया की भूमिका

मीडिया अपने बहुमुखी योगदान के माध्यम से लोकतंत्र को बढ़ावा देने और मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके सबसे महत्वपूर्ण कार्यों में से एक खोजी पत्रकारिता है, जो समाज के भीतर भ्रष्टाचार और कदाचार को उजागर करने के लिए एक शक्तिशाली तंत्र के रूप में कार्य करता है।

खोजी पत्रकार जनहित के मामलों में गहराई से उतरते हैं, अक्सर छिपी हुई सच्चाइयों को उजागर करते हैं, धन के दुरुपयोग को उजागर करते हैं और सत्ता के दुरुपयोग को उजागर करते हैं। गहन शोध और तथ्य जांच के माध्यम से, खोजी पत्रकारिता में भ्रष्टाचार के उन मामलों को उजागर करने की क्षमता होती है जो अन्यथा छिपे हो सकते हैं। सार्वजनिक प्राधिकरण सार्वजनिक प्राधिकरणों, निगमों और संस्थानों को स्थिर करके लोकतांत्रिक प्रणालियों की अखंडता को बनाए रखने में मदद करते हैं और पारदर्शिता और निष्पक्षता की भावना पैदा करते हैं।

इसके अलावा, मीडिया अधिसूचित राजनीतिक भागीदारी और मतदाता शिक्षा के लिए एक आवश्यक उत्प्रेरक के रूप में कार्य करता है। लोकतंत्र में, एक शिक्षित मतदाता चुनावी प्रक्रिया में सार्थक भागीदारी के लिए मौलिक है। मीडिया आउटलेट राजनीतिक दलों, उम्मीदवारों और उनके नीति मंचों के बारे में जानकारी प्रसारित करते हैं, जो नागरिकों को चुनाव के दौरान सूचित निर्णय लेने में मदद करता है। बहस, साक्षात्कार और विश्लेषण के माध्यम से, मीडिया अपने विचार प्रस्तुत करने और एक ऐसे प्रवचन में शामिल होने के लिए एक मंच प्रदान करता है जो मतदान करने वाले लोगों को सूचित और मार्गदर्शन करता है। यह भूमिका न केवल नागरिकों को अपने मूल्यों के अनुरूप चुनाव करने के लिए सशक्त बनाती है, बल्कि नागरिक जिम्मेदारी की भावना को भी बढ़ावा देती है, जिससे लोकतांत्रिक प्रक्रिया बढ़ती है।

## मीडिया नैतिकता और जिम्मेदारियाँ

### स्व–नियमन और प्रेस परिषद मीडिया

इसकी जिम्मेदारियाँ केवल आगे की जानकारी तक ही सीमित हैंय इनमें अपने आचरण को स्वयं विनियमित करने की नैतिक अनिवार्यता शामिल है। स्व–नियमन में मीडिया आउटलेट्स द्वारा स्वेच्छा से नैतिक दिशा–निर्देशों और मानकों का पालन करना शामिल है जो पत्रकारिता की अखंडता सुनिश्चित करते हैं। भारत में, प्रेस काउंसिल ऑफ इंडिया (पीसीआई) एक कानूनी अर्ध–न्यायिक निकाय के रूप में कार्य करता है जो पेशेवर मानकों को बनाए रखते हुए प्रेस की स्वतंत्रता को संरक्षित करने के लिए जिम्मेदार है। पीसीआई में मीडिया और जनता के विभिन्न क्षेत्रों के प्रतिनिधि शामिल होते हैं, जो विनियमन के लिए एक संतुलित दृष्टिकोण को बढ़ावा देते हैं। इसकी प्राथमिक भूमिका पत्रकारिता नैतिकता के उल्लंघन के लिए मीडिया संगठनों के खिलाफ शिकायतों को हल करने के लिए एक तंत्र प्रदान करना है। हालाँकि पीसीआई के निर्णय कानूनी रूप से बाध्यकारी नहीं हैं, लेकिन उद्योग और व्यापक सार्वजनिक क्षेत्र में उनका काफी नैतिक महत्व है। पीसीआई द्वारा सन्निहित स्व–नियमन की यह प्रणाली उच्च मानकों को बनाए रखने और लोकतंत्र के एक जिम्मेदार स्तंभ के रूप में अपनी भूमिका बनाए रखने के लिए मीडिया की प्रतिबद्धता को रेखांकित करती है।

## निष्पक्षता, सटीकता और निष्पक्षता बनाए रखने में मीडिया की जिम्मेदारियाँ

लोकतांत्रिक समाज में सूचना के वाहक के रूप में, मीडिया आउटलेट अपनी रिपोर्टिंग में निष्पक्षता, सटीकता और निष्पक्षता बनाए रखने के लिए जिम्मेदार हैं। निष्पक्षता के लिए अनावश्यक पक्षपात या व्यक्तिगत पूर्वाग्रह के बिना जानकारी प्रस्तुत करना आवश्यक है, जो दर्शकों को अपनी राय बनाने में मदद करता है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि प्रस्तुत की गई जानकारी विश्वसनीय और भरोसेमंद है, सटीकता में सख्त तथ्यों की जांच और सत्यापन शामिल है। निष्पक्षता में विविध दृष्टिकोणों का प्रतिनिधित्व करना और कहानी के सभी पक्षों को आवाज देना शामिल है। मीडिया संस्थानों से निष्पक्ष पर्यवेक्षकों के रूप में कार्य करने, समाचार को राय से अलग करने और यह सुनिश्चित करने की अपेक्षा की जाती है कि उनकी रिपोर्टिंग सत्यापन तथ्यों पर आधारित हो। निष्पक्षता, सटीकता और निष्पक्षता के प्रति यह प्रतिबद्धता न केवल मीडिया में जनता का विश्वास बनाए रखती है बल्कि नागरिकों को सूचित निर्णय लेने के लिए विश्वसनीय जानकारी प्रदान करके लोकतांत्रिक प्रक्रिया की रक्षा भी करती है।

## गलत सूचना फैलाने या घृणा फैलाने वाले भाषण में शामिल होने के कानूनी परिणाम

जबकि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता लोकतंत्र की आधारशिला है, यह पूर्ण नहीं है और उचित सीमाओं के अधीन है, खासकर जब गलत सूचना फैलाने या घृणित भाषण में शामिल होने की बात आती है। झूठी सूचना के प्रसार के गंभीर परिणाम हो सकते हैं, खासकर डिजिटल युग में जहां झूठ तेजी से और व्यापक

रूप से फैल सकता है। गलत सूचना जनता के विश्वास को कमजोर कर सकती है, सार्वजनिक चर्चा को विकृत कर सकती है और यहां तक कि वास्तविक दुनिया को भी प्रभावित कर सकती है। जवाब में, भारतीय कानून दुर्भावनापूर्ण इरादों से गलत सूचना फैलाने वालों के खिलाफ कानूनी कार्रवाई का एक तरीका प्रदान करता है। इसी तरह, घृणित भाषण, जो धर्म, जाति या जातीयता जैसी विशेषताओं के आधार पर व्यक्तियों या समूहों को लक्षित करता है, सामाजिक सद्भाव के लिए हानिकारक माना जाता है और कानूनी प्रतिबंधों के अधीन है। ऐसी कार्रवाइयों के कानूनी परिणामों में मानहानि के मुकदमे, भयंकर आरोप और सजा शामिल हैं। हालांकि, हानिकारक भाषण को प्रतिबंधित करने, प्रतिबंधित करने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की सुरक्षा के बीच एक सावधानीपूर्वक संतुलन है, जिसके लिए यह सुनिश्चित करने के लिए सूक्ष्म कानूनी व्याख्या की आवश्यकता होती है कि वैध अभिव्यक्तियाँ अनुचित अभिव्यक्तियों को कम न करें।

## गलत सूचना फैलाने या घृणा फैलाने वाले भाषण में शामिल होने के कानूनी परिणाम

जबकि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता लोकतंत्र की आधारशिला है, यह पूर्ण नहीं है और उचित सीमाओं के अधीन है, खासकर जब गलत सूचना फैलाने या घृणित भाषण में शामिल होने की बात आती है। झूठी सूचना के प्रसार के गंभीर परिणाम हो सकते हैं, खासकर डिजिटल युग में जहां झूठ तेजी से और व्यापक रूप से फैल सकता है। गलत सूचना जनता के विश्वास को कमजोर कर सकती है, सार्वजनिक चर्चा को विकृत कर सकती है और यहां तक कि वास्तविक दुनिया को भी प्रभावित कर सकती है। जवाब में, भारतीय कानून दुर्भावनापूर्ण इरादों से गलत सूचना फैलाने वालों के खिलाफ कानूनी कार्रवाई का एक तरीका प्रदान करता है। इसी तरह, घृणित भाषण, जो धर्म, जाति या जातीयता जैसी विशेषताओं के आधार पर व्यक्तियों या समूहों को लक्षित करता है, सामाजिक सद्भाव के लिए हानिकारक माना जाता है और कानूनी प्रतिबंधों के अधीन है। ऐसी कार्रवाइयों के कानूनी परिणामों में मानहानि के मुकदमे, भयंकर आरोप और सजा शामिल हैं। हालांकि, प्रतिबंधित, हानिकारक भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की सुरक्षा के बीच एक सावधानीपूर्वक संतुलन एक चुनौती बनी हुई है, जिसके लिए यह सुनिश्चित करने के लिए सूक्ष्म कानूनी व्याख्या की आवश्यकता है कि वैध अभिव्यक्तियाँ अनुचित अभिव्यक्तियों को कम न करें।

## मीडिया के सामने आने वाली कानूनी चुनौतियाँ और दबाव

हालाँकि मीडिया लोकतांत्रिक मूल्यों को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, लेकिन इसे अक्सर कई कानूनी चुनौतियों और दबावों का सामना करना पड़ता है जो आवश्यक कार्यों को करने की इसकी क्षमता में बाधा डाल सकते हैं। एक महत्वपूर्ण चुनौती मानहानि के मामलों का खतरा है, जहाँ मीडिया आउटलेट और पत्रकारों पर ऐसी सामग्री प्रकाशित करने के लिए मुकदमा चलाया जा सकता है जो कथित तौर पर किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा को नुकसान पहुँचाती है। मानहानि के मामलों का खोजी रिपोर्टिंग पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है, क्योंकि मीडिया संगठन कानूनी परिणामों से डर सकते हैं, भले ही उनकी रिपोर्टिंग सटीक और सार्वजनिक हित में हो। इसके अलावा, चौकस, सूचना तक पहुँच और स्रोत सुरक्षा से संबंधित मुद्दे चुनौतीपूर्ण हो सकते हैं। सरकारी निकाय और संस्थान कभी–कभी जानकारी छिपाते हैं, पारदर्शिता में बाधा डालते हैं और मीडिया की गहन जाँच करने की क्षमता में बाधा डालते हैं। स्रोतों की सुरक्षा करना भी उतना ही चुनौतीपूर्ण है, क्योंकि पत्रकारों को अपने स्रोतों का खुलासा करने के लिए मजबूर किया जा सकता है, जो उनकी विश्वसनीयता को खतरे में डाल सकता है और संभावित रूप से मुखबिरों को जोखिम में डाल सकता है।

## लोकतंत्र को बढ़ावा देने में मीडिया की भूमिका

मीडिया अपने बहुमुखी योगदान के माध्यम से लोकतंत्र को बढ़ावा देने और मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके सबसे महत्वपूर्ण कार्यों में से एक खोजी पत्रकारिता है, जो समाज के भीतर भ्रष्टाचार और कदाचार को उजागर करने के लिए एक शक्तिशाली तंत्र के रूप में कार्य करता है। खोजी पत्रकार जनहित के मामलों में गहराई से उतरते हैं, अक्सर छिपी हुई सच्चाइयों को उजागर करते हैं, धन के दुरुपयोग को उजागर करते हैं और सत्ता के दुरुपयोग को उजागर करते हैं। गहन शोध और तथ्य जांच के माध्यम से, खोजी पत्रकारिता में भ्रष्टाचार के उन मामलों को उजागर करने की क्षमता होती है जो अन्यथा छिपे हो सकते हैं। सार्वजनिक अधिकारियों, निगमों और संस्थानों को प्रभावित करके, खोजी

रिपोर्टिंग लोकतांत्रिक प्रणालियों की अखंडता को बनाए रखने में मदद करती है और पारदर्शिता और निष्पक्षता की भावना पैदा करती है।

इसके अलावा, मीडिया अधिसूचित राजनीतिक भागीदारी और मतदाता शिक्षा के लिए एक आवश्यक उत्प्रेरक के रूप में कार्य करता है। लोकतंत्र में, एक शिक्षित मतदाता चुनावी प्रक्रिया में सार्थक भागीदारी के लिए मौलिक है। मीडिया आउटलेट राजनीतिक दलों, उम्मीदवारों और उनके नीति मंचों के बारे में जानकारी प्रसारित करते हैं, जो नागरिकों को चुनाव के दौरान सूचित निर्णय लेने में मदद करता है। बहस, साक्षात्कार और विश्लेषण के माध्यम से, मीडिया अपने विचार प्रस्तुत करने और एक ऐसे प्रवचन में शामिल होने के लिए एक मंच प्रदान करता है जो मतदान करने वाले लोगों को सूचित और मार्गदर्शन करता है। यह भूमिका न केवल नागरिकों को उनके मूल्यों के अनुरूप चुनाव करने के लिए मजबूत करती है बल्कि नागरिक जिम्मेदारी की भावना को भी बढ़ावा देती है, जो लोकतांत्रिक प्रक्रिया को बढ़ाती है।

सार्वजनिक मुद्दों और नीतिगत बहसों पर मीडिया कवरेज लोकतांत्रिक मूल्यों को बढ़ावा देने में इसके महत्व को और रेखांकित करता है। सार्वजनिक चिंता को उजागर करके, मीडिया आउटलेट रचनात्मक संवाद और चर्चा के लिए जगह प्रदान करते हैं। स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा, पर्यावरण और सामाजिक–आर्थिक नीतियों जैसे प्रमुख मुद्दों पर जानकारी का प्रसार नागरिकों को चर्चा में शामिल होने, बदलाव की वकालत करने और जनमत को प्रभावित करने का अधिकार देता है। इसके अलावा, एक रक्षक के रूप में मीडिया का काम सार्वजनिक अधिकारियों को उनके कार्यों के प्रति जवाबदेह बनाने तक बढ़ाया जाता है। पत्रकार सरकारी नीतियों, कार्यों और निर्णयों की जांच करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, यह सुनिश्चित करते हुए कि सत्ता में बैठे लोग उन लोगों के प्रति जवाबदेह हैं जिनकी वे सेवा करते हैं। यह जांच जवाबदेही की संस्कृति को बढ़ावा देती है, संभावित दुरुपयोग को रोकती है और लोकतांत्रिक शासन के सिद्धांतों को मजबूत करती है।

संक्षेप में, खोजी पत्रकारिता से लेकर मतदाता शिक्षा और सार्वजनिक मामलों की कवरेज तक मीडिया के बहुमुखी योगदान सामूहिक रूप से लोकतांत्रिक प्रक्रिया को मजबूत करते हैं। एक सूचित, जुड़े और जवाबदेह नागरिक को बढ़ावा देकर, मीडिया लोकतंत्र की नींव को मजबूत करता है और पारदर्शिता, भागीदारी और जवाबदेही के सिद्धांतों को बनाए रखता है जो लोकतांत्रिक समाजों के कामकाज के लिए महत्वपूर्ण हैं।

## मीडिया नैतिकता और जिम्मेदारियाँ

### स्व–नियंत्रण और प्रेस परिषद

मीडिया की जिम्मेदारियाँ सूचना प्रसारित करने से कहीं आगे तक फैली हुई हैंय इनमें अपने आचरण को स्वयं विनियमित करने की नैतिक अनिवार्यता शामिल है। स्व–नियमन में मीडिया आउटलेट्स द्वारा स्वेच्छा से नैतिक दिशा–निर्देशों और मानकों का पालन करना शामिल है जो पत्रकारिता की अखंडता सुनिश्चित करते हैं। भारत में, प्रेस काउंसिल ऑफ इंडिया (पीसीआई) एक कानूनी अर्ध–न्यायिक निकाय के रूप में कार्य करता है जो पेशेवर मानकों को बनाए रखते हुए प्रेस की स्वतंत्रता को संरक्षित करने के लिए जिम्मेदार है। पीसीआई में मीडिया और जनता के विभिन्न क्षेत्रों के प्रतिनिधि शामिल होते हैं, जो विनियमन के लिए एक संतुलित दृष्टिकोण को बढ़ावा देते हैं। इसकी प्राथमिक भूमिका पत्रकारिता नैतिकता के उल्लंघन के लिए मीडिया संगठनों के खिलाफ शिकायतों को हल करने के लिए एक तंत्र प्रदान करना है। हालाँकि पीसीआई के निर्णय कानूनी रूप से बाध्यकारी नहीं हैं, लेकिन उद्योग और व्यापक सार्वजनिक क्षेत्र में उनका काफी नैतिक महत्व है। पीसीआई द्वारा सन्निहित स्व–नियमन की यह प्रणाली उच्च मानकों को बनाए रखने और लोकतंत्र के एक जिम्मेदार स्तंभ के रूप में अपनी भूमिका बनाए रखने के लिए मीडिया की प्रतिबद्धता को रेखांकित करती है।

## निष्पक्षता, सटीकता और निष्पक्षता बनाए रखने में मीडिया की जिम्मेदारियाँ

लोकतांत्रिक समाज में सूचना के वाहक के रूप में, मीडिया आउटलेट अपनी रिपोर्टिंग में निष्पक्षता, सटीकता और निष्पक्षता बनाए रखने के लिए जिम्मेदार हैं। निष्पक्षता के लिए अनावश्यक पक्षपात या व्यक्तिगत पूर्वाग्रह के बिना जानकारी प्रस्तुत करना आवश्यक है, जो दर्शकों को अपनी राय बनाने में मदद

करता है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि प्रस्तुत की गई जानकारी विश्वसनीय और भरोसेमंद है, सटीकता में सख्त तथ्यों की जांच और सत्यापन शामिल है। निष्पक्षता में विविध दृष्टिकोणों का प्रतिनिधित्व करना और कहानी के सभी पक्षों को आवाज देना शामिल है। मीडिया संस्थानों से निष्पक्ष पर्यवेक्षकों के रूप में कार्य करने, समाचार को राय से अलग करने और यह सुनिश्चित करने की अपेक्षा की जाती है कि उनकी रिपोर्टिंग सत्यापन तथ्यों पर आधारित हो। निष्पक्षता, सटीकता और निष्पक्षता के प्रति यह प्रतिबद्धता न केवल मीडिया में जनता का विश्वास बनाए रखती है बल्कि नागरिकों को सूचित निर्णय लेने के लिए विश्वसनीय जानकारी प्रदान करके लोकतांत्रिक प्रक्रिया की रक्षा भी करती है।

## गलत सूचना फैलाने या घृणा फैलाने वाले भाषण में शामिल होने के कानूनी परिणाम

जबकि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता लोकतंत्र की आधारशिला है, यह पूर्ण नहीं है और उचित सीमाओं के अधीन है, खासकर जब गलत सूचना फैलाने या घृणित भाषण में शामिल होने की बात आती है। झूठी सूचना के प्रसार के गंभीर परिणाम हो सकते हैं, साकार डिजिटल युग में जहां झूठ तेजी से और व्यापक रूप से फैल सकता है। गलत सूचना जनता के विश्वास को कमजोर कर सकती है, सार्वजनिक चर्चा को विकृत कर सकती है और यहां तक कि वास्तविक दुनिया को भी प्रभावित कर सकती है। जवाब में, भारतीय कानून दुर्भावनापूर्ण इरादों से गलत सूचना फैलाने वालों के खिलाफ कानूनी कार्रवाई का एक तरीका प्रदान करता है। इसी तरह, घृणित भाषण, जो धर्म, जाति या जातीयता जैसी विशेषताओं के आधार पर व्यक्तियों या समूहों को लक्षित करता है, सामाजिक सद्भाव के लिए हानिकारक माना जाता है और कानूनी प्रतिबंधों के अधीन है। ऐसी कार्रवाइयों के कानूनी परिणामों में मानहानि के मामले, आपराधिक आरोप और सजा शामिल हैं। हालांकि, हानिकारक भाषण को प्रतिबंधित करने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की सुरक्षा के बीच सावधानीपूर्वक संतुलन एक चुनौती बनी हुई है, जिसके लिए यह सुनिश्चित करने के लिए सूक्ष्म कानूनी व्याख्या की आवश्यकता होती है कि वैध अभिव्यक्ति अनुचित रूप से कम न हो।

संक्षेप में, पत्रकारिता का स्व–नियमन, जिम्मेदारी और कानूनी सीमाएं परस्पर जुड़े हुए घटक हैं जो लोकतांत्रिक ढांचे के भीतर मीडिया के कामकाज को आकार देते हैं। स्व–नियमन के माध्यम से नैतिक मानकों को बनाए रखना, निष्पक्षता और सटीकता बनाए रखना और कानूनी सीमाओं का पालन करना मीडिया की भूमिका का एक अभिन्न अंग है, जो एक सूचित और जिम्मेदार रक्षक के रूप में लोकतांत्रिक मूल्यों के स्वास्थ्य और जीवन शक्ति में योगदान देता है।

## मीडिया के सामने आने वाली कानूनी चुनौतियाँ और दबाव

हालाँकि मीडिया लोकतांत्रिक मूल्यों को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, लेकिन इसे अक्सर कई कानूनी चुनौतियों और दबावों का सामना करना पड़ता है जो आवश्यक कार्यों को करने की इसकी क्षमता में बाधा डाल सकते हैं। एक महत्वपूर्ण चुनौती मानहानि के मामलों का खतरा है, जहाँ मीडिया आउटलेट और पत्रकारों पर ऐसी सामग्री प्रकाशित करने के लिए मुकदमा चलाया जा सकता है जो कथित तौर पर किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा को नुकसान पहुँचाती है। मानहानि के मामलों का खोजी रिपोर्टिंग पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है, क्योंकि मीडिया संगठन कानूनी परिणामों से डर सकते हैं, भले ही उनकी रिपोर्टिंग सटीक और सार्वजनिक हित में हो। इसके अलावा, चौकस, सूचना तक पहुँच और स्रोत सुरक्षा से संबंधित मुद्दे चुनौतीपूर्ण हो सकते हैं। सरकारी निकाय और संस्थान कभी–कभी जानकारी छिपाते हैं, पारदर्शिता में बाधा डालते हैं और मीडिया की गहन जाँच करने की क्षमता में बाधा डालते हैं। स्रोतों की सुरक्षा करना भी उतना ही चुनौतीपूर्ण है, क्योंकि पत्रकारों को अपने स्रोतों का खुलासा करने के लिए मजबूर किया जा सकता है, जो उनकी विश्वसनीयता को खतरे में डाल सकता है और संभावित रूप से मुखबिरों को जोखिम में डाल सकता है।

प्रेस की स्वतंत्रता पर सेंसरशिप और प्रतिबंधों के प्रयास भी महत्वपूर्ण चुनौतियाँ पैदा करते हैं। मीडिया संगठनों को कभी–कभी कुछ कहानियों या दृष्टिकोणों को दबाने के लिए शक्तिशाली संस्थानों के दबाव का सामना करना पड़ता है, और सरकारें विनियामक उपायों के माध्यम से महत्वपूर्ण रिपोर्टिंग को कम करने का प्रयास कर सकती हैं। ये क्रियाएँ मीडिया की स्वतंत्रता और जनता को जानने के अधिकार को कमजोर करती हैं। इसके अलावा, राजद्रोह या राष्ट्रीय सुरक्षा जैसे अस्पष्ट या अस्पष्ट कानूनों का इस्तेमाल असहमति की आवाजों और खोजी रिपोर्टिंग को दबाने के लिए किया जा सकता है, क्योंकि

मीडिया पेशेवर सच्चाई को उजागर करने और कानूनी परिणामों से बचने के बीच एक नाजुक संतुलन बनाता है।

डिजिटल युग में, मीडिया की ऑनलाइन उपस्थिति नई कानूनी चुनौतियाँ पेश करती है। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर गलत सूचना और फर्जी ख़बरों का तेजी से प्रसार लोगों का भरोसा खत्म कर सकता है और उन्हें नुकसान पहुँचा सकता है। सूचना के तथ्यों की जाँच और सत्यापन करने के लिए मीडिया आउटलेट की जिम्मेदारी और भी महत्वपूर्ण हो जाती है, लेकिन उपयोगकर्ता–जनित सामग्रियों के लिए ऑनलाइन प्लेटफॉर्म की कानूनी जिम्मेदारी निर्धारित करना एक जटिल कानूनी प्रश्न प्रस्तुत करता है। इसके अतिरिक्त, ऑनलाइन निगरानी और डेटा गोपनीयता पर चिंताएँ मीडिया स्रोतों को बाधित कर सकती हैं और स्वतंत्र रूप से काम करने की क्षमता को बाधित कर सकती हैं।

सामूहिक रूप से, ये कानूनी चुनौतियाँ और दबाव एक मजबूत कानूनी ढांचे की आवश्यकता को रेखांकित करते हैं जो वैध चिंताओं को संबोधित करके मीडिया की स्वतंत्रता की रक्षा करता है। मॉनिटर के रूप में मीडिया की भूमिका और अप्रतिबंधित अभिव्यक्ति के संभावित परिणामों के बीच संतुलन बनाना एक सतत चुनौती बनी हुई है, जिसके लिए निरंतर कानूनी जांच और अनुकूलन की आवश्यकता होती है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि मीडिया अपनी लोकतांत्रिक जिम्मेदारियों को प्रभावी ढंग से पूरा कर सके।

## डिजिटल मीडिया और नई चुनौतियाँ

### आईटी अधिनियम के तहत ऑनलाइन मीडिया प्लेटफॉर्म और सोशल मीडिया का विनियमन

आईटी अधिनियम के तहत ऑनलाइन मीडिया प्लेटफॉर्म और सोशल मीडिया का विनियमन उस कानूनी ढांचे को संदर्भित करता है जो डिजिटल प्लेटफॉर्म के कामकाज, सामग्री और व्यवहार को नियंत्रित करता है। आईटी अधिनियम सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम) भारत सरकार द्वारा डिजिटल संचार और लेनदेन के विभिन्न पहलुओं को संबोधित करने के लिए बनाया गया एक कानून है। हाल के वर्षों में, गलत सूचना, घृणित भाषण और अन्य प्रकार की हानिकारक सामग्रियों के बारे में चिंताओं के कारण ऑनलाइन प्लेटफॉर्म के अधिक कड़े विनियमन की आवश्यकता पर बहस बढ़ रही है।

### चुनौतियाँ

सामग्री मॉडरेशनः ऑनलाइन प्लेटफॉर्म बड़ी मात्रा में उपयोगकर्ता–जनित सामग्रियों की मेजबानी करते हैं, जिससे नफरत फैलाने वाली भाषा, फर्जी ख़बरें और हिंसा जैसी हानिकारक या अवैध सामग्रियों को मॉडरेट करना और फिल्टर करना चुनौतीपूर्ण हो जाता है।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रताः हानिकारक सामग्रियों को संतुलित करना और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की सुरक्षा के बीच संतुलन बनाना एक जटिल चुनौती है। संचालन से सेंसरशिप और वैध ध्वनियों की वैधता हो सकती है।

वैश्विक बनाम स्थानीय मानकः ऑनलाइन प्लेटफॉर्म वैश्विक स्तर पर संचालित होते हैं, जिससे विभिन्न देशों में विविध सांस्कृतिक और कानूनी मानदंडों का पालन करना मुश्किल हो जाता है।

प्लेटफॉर्म की जिम्मेदारीः उपयोगकर्ता–जनित सामग्रियों के लिए प्लेटफॉर्म की जिम्मेदारी निर्धारित करना एक कानूनी रूप से अस्पष्ट क्षेत्र है। प्लेटफॉर्म अक्सर प्रकाशक नहीं बल्कि मध्यस्थ होने का दावा करते हैं, जो उनकी कानूनी जिम्मेदारियों को प्रभावित कर सकता है।

## फर्जी खबरें, दुष्प्रचार और ऑनलाइन उत्पीड़न को संबोधित करना

फर्जी खबरें और दुष्प्रचार ऑनलाइन प्लेटफॉर्म पर प्रचलित मुद्दे हैं। इनसे सामाजिक अशांति, सार्वजनिक दहशत और गलत सूचना से प्रेरित निर्णय हो सकते हैं। साइबरबुलिंग और ट्रोलिंग सहित ऑनलाइन उत्पीड़न, उपयोगकर्ता की सुरक्षा और मानसिक कल्याण के लिए भी महत्वपूर्ण चुनौतियां पैदा करता है।

## उपाय

तथ्यों की जांच और सत्यापनः झूठी या भ्रामक जानकारी की पहचान करना और इसे लेबल करने के लिए मुफ्त तथ्यों के साथ सहयोग करना उपयोगकर्ताओं को विश्वसनीय और अविश्वसनीय सामग्रियों के बीच अंतर करने में मदद कर सकता है।

उपयोगकर्ता शिक्षाः उपयोगकर्ताओं के बीच मीडिया साक्षरता को बढ़ावा देना ताकि उन्हें सूचना स्रोतों को पहचानने और फर्जी खबरों से विश्वसनीय सामग्री की पहचान करने में मदद मिल सके।

रिपोर्टिंग तंत्रः उपयोगकर्ता उत्पीड़न की रिपोर्ट करने के लिए फर्जी समाचारों, अपमानजनक भाषा और उपयोगकर्ता के अनुकूल रिपोर्टिंग तंत्र को लागू करके सामग्री मॉडरेशन सुविधाएँ प्रदान कर सकते हैं।

स्वचालित जांचः गलत सूचना और उत्पीड़न के पैटर्न की पहचान करने के लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता और मशीन लर्निंग एल्गोरिदम का उपयोग करने से सामग्रियों को तेजी से हटाने में मदद मिल सकती है।

## राष्ट्रीय सुरक्षा हितों के साथ ऑनलाइन निगरानी चिंताओं को संतुलित करनाः

राष्ट्रीय सुरक्षा उद्देश्यों के लिए ऑनलाइन निगरानी और व्यक्तियों के गोपनीयता अधिकारों की रक्षा के बीच संतुलन महत्वपूर्ण है।

## विचार

गोपनीयता अधिकारः यह सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है कि निगरानी उपाय व्यक्तियों की गोपनीयता के अधिकार का उल्लंघन न करें। उचित कानूनी सुरक्षा उपाय और निरीक्षण तंत्र मौजूद होने चाहिए।

डेटा सुरक्षाः एकत्रित निगरानी डेटा को अनधिकृत पहुँच या उल्लंघन को रोकने के लिए पर्याप्त रूप से संरक्षित किया जाना चाहिए जो व्यक्तियों के व्यक्तिगत हितों से समझौता कर सकता है।

पारदर्शिता और जवाबदेहीः निगरानी गतिविधियों को पारदर्शी तरीके से संचालित किया जाना चाहिए, और सरकारी एजेंसियों को उनके कार्यों के लिए जवाबदेह ठहराया जाना चाहिए।

न्यायिक निरीक्षणः निगरानी अनुरोधों के अनुमोदन में न्यायिक अधिकारियों को शामिल करना निगरानी शक्तियों के दुरुपयोग को रोकने में मदद कर सकता है।

आनुपातिक उपायः निगरानी गतिविधियाँ खतरे के स्तर के अनुपात में होनी चाहिए, और पूरी आबादी की व्यापक निगरानी से बचना चाहिए।

निष्कर्ष में, ऑनलाइन मीडिया प्लेटफॉर्म और सोशल मीडिया को विनियमित करने, फर्जी खबरों और ऑनलाइन उत्पीड़न को संबोधित करने और राष्ट्रीय राष्ट्रीय राष्ट्रीय राष्ट्रीय राष्ट्रीय सुरक्षा हितों के साथ ऑनलाइन निगरानी को संतुलित करने के लिए कानूनी क्षेत्रीय, नैतिक और सामाजिक कारकों को सावधानीपूर्वक संतुलित करने की आवश्यकता है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, गोपनीयता और सुरक्षा के बीच सही संतुलन बनाना एक सतत चुनौती है जिसके लिए सरकारों, तकनीकी कंपनियों, नागरिक समाज और नागरिकों के बीच सहयोग की आवश्यकता होती है।

एंटी–स्लैप कानूनः स्लैप (सार्वजनिक भागीदारी के खिलाफ रणनीतिक मुकदमा) व्यक्तियों और संगठनों को पत्रकारों और मीडिया आउटलेट्स को चुप कराने के लिए तुच्छ मामलों का उपयोग करने से रोकता है।

## मीडिया साक्षरता को मजबूत करना और मीडिया के जिम्मेदार उपभोग के लिए शिक्षा

शिक्षा में मीडिया साक्षरता को शामिल करेंः छात्रों को महत्वपूर्ण सोच कौशल, तथ्य जाँच के तथ्य और मीडिया सामग्री का गंभीरता से विश्लेषण करने की क्षमता सिखाने के लिए स्कूल के पाठ्यक्रमों में मीडिया साक्षरता को एकीकृत करें।

जन जागरूकता अभियानः ऐसे अभियान शुरू करें जो जनता को मीडिया साक्षरता के बारे में शिक्षित करें, विश्वसनीय स्रोतों से जानकारी की पुष्टि करने और मीडिया पूर्वाग्रह को समझने के महत्व पर प्रकाश डालें।

शैक्षणिक संस्थानों के साथ सहयोगः छात्रों और वयस्कों दोनों के लिए मीडिया साक्षरता कार्यक्रम और पाठ्यक्रम विकसित करने के लिए, विश्वविद्यालयों, कॉलेजों और शोध संस्थानों के साथ सहयोग करें।

डिजिटल प्लेटफॉर्म में मीडिया साक्षरताः सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म और ऑनलाइन मीडिया आउटलेट ऐसे संकेत या उपकरण प्रदान कर सकते हैं जो उपयोगकर्ताओं को जानकारी साझा करने से पहले उन्हें सत्यापित करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

## मीडिया, नागरिक समाज और कानूनी विशेषज्ञों के बीच सहयोग को प्रोत्साहित करें

मीडिया नागरिक समाज भागीदारीः मीडिया संगठनों और नागरिक समाज समूहों के बीच भागीदारी को सुविधाजनक बनाना ताकि सामूहिक रूप से सरकारी पारदर्शिता, मानवाधिकार उल्लंघन और जवाबदेही जैसे मुद्दों का समाधान किया जा सके।

कानूनी सहायता नेटवर्कः कानूनी सहायता नेटवर्क की स्थापना करें जो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और सूचना तक पहुँच से संबंधित कानूनी चुनौतियों का सामना कर रहे पत्रकारों और मीडिया संगठनों को मुफ्त कानूनी सहायता प्रदान करता है।

संयुक्त वकालत प्रयासः मीडिया आउटलेट कानूनी विशेषज्ञों और नागरिक समाज संगठनों को कानूनी सुधारों की वकालत करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं जो मीडिया की स्वतंत्रता को मजबूत करते हैं और पत्रकारों के अधिकारों की रक्षा करते हैं।

तथ्य जांच संगठनः स्वतंत्र तथ्य जांच संगठनों का समर्थन करें जो सूचना को सत्यापित करने और गलत सूचना का मुकाबला करने के लिए मीडिया के साथ मिलकर काम करते हैं।

### निष्कर्ष

अंत में, डिजिटल युग द्वारा प्रस्तुत चुनौतियों और अवसरों से निपटने के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण की आवश्यकता है जो नवाचार, स्वतंत्रता और जिम्मेदारी को संतुलित करता है। आईटी अधिनियम को ऑनलाइन मीडिया प्लेटफार्मों और हानिकारक सामग्रियों पर अंकुश लगाने और स्वतंत्र अभिव्यक्ति के सिद्धांतों की रक्षा के लिए सोशल मीडिया के विनियमन के बीच एक नाजुक संतुलन की आवश्यकता है। संघर्ष, फर्जी खबरों, प्रचार और ऑनलाइन उत्पीड़न के लिए मीडिया साक्षरता और तकनीकी समाधानों में ठोस प्रयासों की आवश्यकता होती है ताकि उपयोगकर्ताओं को झूठ से सही जानकारी की पहचान करने में सक्षम बनाया जा सके। ऑनलाइन निगरानी चिंताओं और राष्ट्रीय सुरक्षा हितों के बीच जटिल पारस्परिक कार्रवाई विवेकपूर्ण निगरानी, डेटा सुरक्षा और व्यक्तिगत गोपनीयता अधिकारों का सम्मान करने वाले आनुपातिक उपायों की आवश्यकता को रेखांकित करती है। इसके अलावा, मीडिया के लिए लोकतंत्र के एक मजबूत स्तंभ के रूप में कार्य करना, कानूनी ढांचे को बढ़ाना, मीडिया साक्षरता को बढ़ावा देना और मीडिया, नागरिक समाज और कानूनी विशेषज्ञों के बीच सहयोग को बढ़ावा देना अनिवार्य है। ये सिफारिशें सामूहिक रूप से सूचित नागरिकों को आकार देने, पारदर्शिता को बढ़ावा देने और डिजिटल युग में एक समृद्ध लोकतांत्रिक समाज की नींव को बनाए रखने में मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका को मजबूत करने का प्रयास करती हैं।

## संदर्भ

1. ए.एच. हैनसन और जेनेट डगलस, (1972), ''भारत का लोकतंत्र'', विकास पब्लिशिंग हाउस प्राइवेट लिमिटेड।
2. अलेक्जेंडर बार्कर, ''डोमिनियन में लोकतंत्र'', टोरंटो यूनिवर्सिटी प्रेस।
3. एंडरसन, आर.के. और स्ट्रेस्ट्री, एल. (एड), (2000), ''मीडिया कमर्शियलिज्म में महत्वपूर्ण अध्ययन'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

4. अप्पियन जोई, (1977), ''लोकतंत्र का शासन और कानून विकासशील समाज'', भारतीय सांस्कृतिक शोधकर्ता परिषद,
5. ऑस्टिन, ग्रानविले, (1976), ''लोकतांत्रिक संविधान का काम करना'', (भारतीय अनुभव), नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड,
6. बर्नार्ड रुबिन, (1977) ''मीडिया राजनीति, लोकतंत्र'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
7. भारद्वाज आर.के., (1980), ''भारत में लोकतंत्र, राष्ट्रीय प्रकाशन'', दिल्ली,
8. चेकी डैन ए, (1979) ''भागीदारीपूर्ण लोकतंत्र कार्रवाई में'', विकास प्रकाशन।
9. चौलाचौला, एन.एल. 1983) परिवर्तनः एक भारतीय अवलोकन ''', मीडिया एशिया,
10. कोहेन कार्ल, (1972), ''साम्यवाद, फासीवाद और लोकतंत्र'', रैंडम हाउस न्यूयॉर्क।
11. कोरोनल। (2003), ''लोकतंत्र को गहरा करने में मीडिया की भूमिका''।

# ख्यातकार दयालदास सिंढ़ायच

**– डॉ. सुरेश कुमार साँदू**
सह आचार्य (इतिहास),
सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय, अजमेर

राजस्थान के ख्यातकारों में दयालदास सिंढ़ायच का नाम विशेष उल्लेशनीय रहा है। चारण जाति में बांकीदास आशिया के बाद दयालदास का ही नाम आता है जिसने ख्यात लेखन की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए न केवल बीकानेर राज्य का इतिहास लिखा है अपितु मारवाड़ के राठौड़ शासकों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। मारू चारण जाति की भादलिया शाखा की एक उप–शाखा सिंढ़ायच रही है। ऐसी लोक मान्यता है कि नरसिंह भादलिया को नाहड़राव पड़िहार ने कई सिंह (शेर) को मारने के एवज में 'सिंहढ़ायक' की उपाधि प्रदान की जिसका अपभ्रंश सिंढ़ायच है। इसी वंश में बीकानेर राज्य के कूबिया गांव में वि.सं. 1855 (1798 ई.) के करीब सिंढ़ायच दयालदास का जन्म हुआ।[1] इसके पिता का नाम खेतसी था। वह सर्वप्रथम बीकानेर नरेश रतनसिंह (1828–1851 ई.) की सेवा में रहा। बांकीदास की तरह उसे इतिहास से बड़ा लगाव था। बीकानेर राजघराने की ओर से उसे अच्छा सम्मान मिला। शादी इत्यादि महोत्सव के समय उसे अनेक बार पुरस्कृत किया गया।[2]

दयालदास बड़ा ही योग्य और विद्वान व्यक्ति था। उसे न केवल बीकानेर राज्य के इतिहास की जानकारी थी अपितु राजपूताने के दूसरे राज्यों के इतिहास का भी ज्ञान था। अंग्रेज सरकार के साथ संधि होने के पीछे राजपूताने के नरेशों को अपने–अपने राज्यों का इतिहास लिखवाने की आवश्यकता हुई। यों विधिवत् बीकानेर का इतिहास पहले नहीं लिखा गया था। इसलिए महाराजा रतनसिंह ने दयालदास को इतिहास–लेखन के लिए उपयुक्त समझकर बीकानेर राज्य का इतिहास तैयार करने की आज्ञा दी।[3] बीकानेर राज्य का इतिहास लिखवाने का दूसरा कारण यह भी रहा है कि जेम्सटॉड ने अपने ग्रंथ में बीकानेर घराने को द्वितीय श्रेणी का राज्य बताकर बीकानेर के राठौड़ों को समुचित स्थान नहीं दिया जो उन्हें मिलना चाहिए था।[4]

**दयालदास की ख्यात–** इतिहास लिखने के लिए दयालदास को बीकानेर राज्य में संग्रहीत की गई सभी प्रकार की ऐतिहासिक सामग्री सुलभ कराई गई। इस प्रकार ख्यातें– 'बीकानेर रे राठौड़ा री ख्यात– महाराजा सुजानसिंह घजी सूं. महाराजा गजसिंहजी तांई', ऐतिहासिक बातें, फरमान, पट्टे, परवाने, वंशावलियों एवं ऐतिहासिक काव्य ग्रन्थों के आधार पर दयालदास ने राव सीहा से महाराजा सरदारसिंह के राज्यारोहण तक का इतिहास लिखा जो 'दयालदास री ख्यात' के नाम से प्रसिद्ध हैं यह ख्यात 1852 ई. के लगभग सम्पूर्ण हुई। ख्यात की भाषा राजस्थानी है जिसमें मूलतः वीकानेरी शब्दों की भरमार है। यह ख्यात गद्य में लिखी गई है परन्तु इसमें घटनाओं के समसामयिक कवियों द्वारा लिखे गये अनेक वीर गीत, कवित्त, निवाणी, वचनिका, दोहे इत्यादि भी दिये हैं जिससे घटनाओं की पुष्टि हो सके। मूलतः राजा का जन्म, राज्यारोहण, उसके जीवन की प्रमुख घटनायें, उसकी रानियों, कुंवर, कुंवरियों का विवरण दिया है। वैसे राठौड़ों का प्रारम्भिक इतिहास जोधपुर राज्य की ख्याति देखने को मिलता है। बीकानेर के इतिहास सम्बन्धी घटनाओं के बारे में यह कहना अनुचित नहीं होगा कि 16वीं व 17वीं शताब्दी की घटनाओं के बनिस्पत 18वीं शताब्दी की घटनायें अधिक प्रामाणिक है। पड़ौसी राज्यों से संघर्ष केन्द्रीय सत्ता से बीकानेर

[1] ओझाः बीकानेर राज्य का इतिहास–II

[2] 1840 ई. में वीकानेर युवराज सरदारसिंह का विवाह मेवाड़ के महाराणा सरदार सिंह की पुत्री महताव कुंवरी के साथ हुआ, उस समय दयालदास महाराजा रतनसिंह के साथ बना हुआ था, विवाह के समय उसे पुरस्कृत किया गया। (ओझाः बीकानेर राज्य का इतिहास II, पृ. 427)

[3] ओझाः

[4] एनल्स एण्ड एण्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, पृ. 1123, 1920

घराने के सम्बन्ध आदि अनेक महत्वपूर्ण पहलुओं का भी विवेचन ख्यात में दिया है। बीकानेर के राठौड़ों की मर्यादा को ठेस नहीं पहुंचे इसका लेखक ने पूरा ख्याल रखा है इसलिए उसने बीकानेर राजघराने में हुए मुगलों के वैवाहिक सम्बन्धों का कहीं जिक्र तक नहीं किया। इस ख्यात की ऐतिहासिक कमियों के बारे में डा. नारायणसिंह भाटी के विचार प्रस्तुत हैं–

"दयादास की ख्यात जहां विस्तृत और रोचक है, वहीं इसमें ऐतिहासिक कमियां भी हैं। जिसके मुख्य दो कारण हैं पहला तो यह कि यह पूर्ण रूप से राज्याश्रय में लिखी गयी है इसलिए इसमें कई घटनाओं को तोड़मरोड़ कर पेश किया गया है और इस बात का ख्याल रखा गया है कि बीकानेर के शासकों का वर्चस्व कम न हो। ख्यात में खास तौर से मुगल बीकानेर सम्बन्धों में लेखक काफी कुछ पक्षपात कर गया है और कई तथ्यों की उसने अनदेखी कर दी है। दूसरा कारण यह है कि लेखक ने जहां फारसी के फरमानों आदि का पर्याप्त उपयोग किया है वहां शिलालेखों के उपयोग की प्रवृत्ति उसने नहीं दिखाई जिससे घटनाओं के क्रम को ऐतिहासिक तिथियों की दृष्टि से सही क्रम देने में वह जगह–जगह चूक गया है।"

फिर भी इस ख्यात का अपना अलग महत्व है, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। कर्नल पाउलेट ने अपने 'गैजेटियर ऑफ दि बीकानेर स्टेट' तैयार करने में इसका भरपूर उपयोग किया। इटली निवासी टैसीटोरी ने ऐशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता के लिए अपून संस्कृत पुस्तकालय के ग्रन्थों का विस्तृत सर्वेक्षण किया, उसमें इस ख्यात की महत्ता को उसने स्वीकार किया है। गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने बीकानेर राज्य के इतिहास–लेखन में इस ख्यात के ही ज्यादातर संदर्भ स्वीकार किये हैं।

दूसरी ख्यातों की तरह इसमें दिये गये घटनाओं के संवत् व तिथियां कहीं–कहीं अशुद्ध हैं परन्तु राजकीय रेकार्ड के अनुसार संवत्, तिथियां दी हैं वे सही हैं। शार्दूल राजस्थान रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर ने दयालदास की ख्यात का मध्य भाग राव बीका से राजा अनूपसिंह तक (संवत् 1495–1755) प्रकाशित करवाया, जिसका सम्पादन डा. दशरथ शर्मा ने किया था।[1] वस्तुतः इस समूचे ख्यात–ग्रन्थ का सम्पादन व प्रकाशन होना चाहिए तभी शोधार्थी इस ग्रन्थ से पूर्ण लाभान्वित होंगे।

## दयालदास की अन्य कृतियों का विवरण –

**देश दर्पण –** दयालदास की दूसरी मुख्य रचना देश–दर्पण है जो बीकानेर नरेश महाराजा सरदार सिंह के काल में 1871 ई. में वैद मेहता राव जसवन्तसिंह के आदेश पर उसने तैयार की थी। इसमें बीकानेर के राठौड़ों के उद्भव से महाराजा रतनसिंह तक का हाल दिया है। बादशाही फरमान, अंग्रेजों से सन्धिनामें आदि की नकलें भी दी हैं तथा बीकानेर राज्य के पट्टा गांवों की सूची भी अंकित है। मूलतः बीकावतों, कांधलोतों, बीदावतों आदि राठौड़ों की खांपों पर अच्छा प्रकाश डाला है।[2]

**आर्याख्यान कल्पद्रुम** – बीकानेर नरेश महाराजा डूंगरसिंह को इन दो ऐतिहासिक ग्रन्थों से संतोष नहीं हुआ तो उन्होंने समस्त भारतवर्ष का इतिहास प्रान्तीय भाषा मे लिखने की आज्ञा दयालदास को दी। इस पर वि.सं. 1934 (1877 ई.) में यह ग्रन्थ लिखा गया। इसके अन्त में जोधपुर के शासकों का हाल, राठौड़ों की शाखाओं की विगत एवं वंशावलियां आदि भी संग्रहीत की गई है।[3]

[1] इसी सम्पादित ग्रन्थ का तिथिक्रम इस पुस्तक में दिया है।

[2] परम्परा, भाग–74–75, पृ. 58–59, पंवार वंश दर्पण, दयालदास की रचनाएं, पृ. 4

[3] विशेष विवरण के लिए देंखे– परम्परा, भाग 74–75, पृ. 63–64; ख्यातकार दयालदास सिंढ़ायच, लेखक–डा. घनश्याम देवड़ा।

दयालदास ख्यातकार होने के साथ सुकवि भी था। जस रत्नाकर, सुजस बावनी और पंवार वंश दर्पण आदि उसकी पद्य रचनाएं भी महत्वपूर्ण हैं।

**जस रत्नाकर–** महाराजा लक्ष्मणसिंह के भाई महाराजा रतनसिह के आश्रम में दयालदास ने इस ग्रन्थ की रचना की। बीकानेर के नरेशों का इतिवृत्त इस कृति में दिया है। यह कृति अपूर्ण है।

**सुजस बावनी–** यह पद्यबद्ध रचना महाराजा लक्ष्मणसिंह की प्रशस्ति में लिखी गई जो 53 पद्यों में है। इसमें कवि की काव्य शास्त्र सम्बन्धी जानकारी का सुन्दर परिचय मिलता है।

**पंवार वंश दर्पण–** दयालदास की उपरोक्त सभी कृतियां अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर में मिली हैं पर दयालदास की यह कृति भंडारकर ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट पूना में प्राप्त हुई। इसमें पंवार क्षत्रियों पर संक्षिप्त प्रकाश पड़ा है। यह 25 दोहे कवित्त की लघु रचना है। नारसैर ग्राम के ठाकुर अजीतसिंह खुमाणसिंहोत की आज्ञा से वि.सं. 1921 (1864 ई.) में यह ग्रन्थ रचा गया। इसी ग्रन्थ में पंवारों की वंशावली दी है। प्रारम्भ के शासकों की वंशावली अशुद्ध है पर बीकानेर के पंवार सामन्तों के बारे में अनेक सूचनायें दी हैं जो महत्वपूर्ण हैं। उस समय पंवारों को बीकानेर राज्य की ओर से कौन–कौन से गांव मिले हुए थे, इसकी भी जानकारी मिलती है।[1]

इसके अतिरिक्त दयालदास रचित 'अजस इक्कीसी', 'हरजस', 'राव राजा बनेसिंह रा कवित्त', 'महाराजा जवानसिंह रा दूहा', 'आदि रचनाएं भी अनूप संस्कृत पुस्तकालय में संग्रहीत हैं। उसने 'नवरत्नां रे नव कवित्त' की टीका भी की थी।

दयालदास की कृतियों के अध्ययन से पता चलता है कि वह एक इतिहासकार ही नहीं, महान् साहित्यकार, सुकवि और टीकाकार भी था। उसकी रचनाएं गद्य व पद्य दोनों में सुलभ होती हैं। उसने अपना सम्पूर्ण जीवन विविध रचनाओं के संग्रह और लेखन में बिताया। इस प्रकार वह बीकानेर के महाराजा रतनसिंह, सरदार सिंह व डूंगरसिंह का कृपा पात्र रह कर करीब 93 वर्ष की अवस्था में वि.सं. 1948 वैशाख मास (1891 ई.) में मृत्यु को प्राप्त हुआ।

[1] पंवार वंश दर्पण, सं. दशरथ शर्मा, शार्दूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर।